RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 | अंक : 10 | कुल पृष्ठ : 36 | 4 अक्टूबर, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- | वार्षिक : 150/- रुपये | पंचवर्षीय 700/- रुपये | दस वर्षीय 1300/- रुपये

आयुवान तुम आभा सबकी, जो तेरे कहलाते हैं।
श्रद्धा सुमन समर्पित तुझकों, सहजभाव समभाव लिए।।

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति/4 अक्टूबर/2019/2

संघशक्ति

4 अक्टूबर, 2019

वर्ष : 56 अंक-10

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ धर्म का वास्तविक स्वरूप	✍ स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज	06
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	10
❍ अमर ज्योति आयुवान	✍ श्री धौंकलसिंह चरला	12
❍ आध्यात्मिक अनुभूतियों की सत्यता	✍ स्वामी यतीश्वरानन्द	14
❍ राव तणुराव जी-जुगराज विजयरावजी 'चूड़ाला'	✍ श्री रतनसिंह बडोड़ागाँव	17
❍ मेरी साधना	✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	19
❍ विचार-सरिता (अष्टचत्वारिंशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	22
❍ क्या मैं स्वतंत्र हूँ	✍ संकलित	25
❍ पुरुषार्थी बनें	✍ संकलित	26
❍ संस्कार और आदर-सम्मान	✍ श्रीमती रश्मि रामदेरिया	27
❍ संस्कार और आदर-सम्मान	✍ श्री कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद	29
❍ अपनी बात	✍	31

समाचार संक्षेप

शताब्दी वर्ष :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघप्रमुख पू. आयुवानसिंहजी का जन्म 17 अक्टूबर, 1920 को हुआ था। 17 अक्टूबर, 2019 को उनके जन्म के 99 वर्ष पूरे होकर सौवां वर्ष प्रारम्भ हो जाएगा। इस शताब्दी वर्ष (17 अक्टूबर, 2019 से 17 अक्टूबर, 2020 तक) में समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम संघ में बनाए जाएंगे। कार्यक्रम संभाग, प्रान्त, मण्डल स्तर पर मनेंगे तो शाखा स्तर पर भी आयोजित होंगे। कार्यक्रमों में पू. आयुवानसिंहजी के जीवन सम्बन्धी चर्चाएँ होंगी तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्यरत समाज बन्धुओं से सम्पर्क बनाने का प्रयास भी किया जाएगा। प्रदेश भर में एक ही बड़ा कार्यक्रम करने की बजाए अनेक कार्यक्रम जगह-जगह पर किए जाएँ तो ज्यादा लोगों तक पहुँच बनती है तथा अनेक क्षेत्रों तक बात पहुँचती है। इस वर्ष 17 अक्टूबर (जन्मदिवस) से ही कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाएंगे।

संघप्रमुख श्री का प्रवास :

अगस्त माह में अपने बाड़मेर प्रवास के समय, आलोक आश्रम में जाट एवं विश्नोई समाज के समाज बन्धुओं को आमंत्रित किया गया और उन्हें 'यथार्थगीता' पुस्तकें भेंट की गई, ऐसे स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज के निर्देश की अनुपालना की। इस अवसर पर संघप्रमुखश्री ने बताया कि गीता संपूर्ण जीवन की शिक्षा है। इसके अनुसार जीवन बनाने पर लौकिक और पारलौकिक विकास की राह खुलती है। आज विकृतियाँ चारों ओर नजर आ रही हैं, उन्हें छोड़कर नेक बनना आवश्यक है। अपनी निखरित शक्ति को अच्छे कामों में लगाएँ। जीवन में त्याग को अपनाएँ। इस अवसर पर शिक्षक, अधिवक्ता, विद्यार्थी आमंत्रित थे। कुछ आमंत्रित लोगों ने भी अपने विचार प्रकट किए।

बाड़मेर प्रवास की अवधि में चोहटन की यात्रा के समय विरात्रा माता और वैर का थान भी पधारे। एक दिन स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज के शिष्य अकेला महाराज व लालजी महाराज भी आलोक आश्रम आए और संघप्रमुखश्री से आध्यात्मिक चर्चा की।

बाड़मेर से बालोतरा पहुँचकर स्नेहमिलन कार्यक्रम में सम्मिलित हुए और उसी दिन शाम सिवाना में स्नेह मिलन कार्यक्रम आयोजित हुआ। अगले दिन भीनमाल में स्नेह मिलन कार्यक्रम में रहे। भीनमाल के निकट भागल भीम स्थित वैदिक अनुसंधान केन्द्र के संस्थापक स्वामी अग्निव्रत नैष्ठिक संघप्रमुखश्री से मिलने आए और वैदिक भौतिकी पर किए गये अपने शोध की जानकारी दी। भीनमाल में तथा जोधपुर में दुर्गादास स्मृति समारोहों में संघप्रमुखश्री का सान्निध्य मिला। जोधपुर में संघ परिवारों की महिलाएँ भी मिलने पहुँची।

30 अगस्त को संघप्रमुखश्री सुरेन्द्रनगर स्थित संघ कार्यालय शक्तिधाम पहुँचे। 6 सितम्बर तक सुरेन्द्रनगर प्रवास में संघप्रमुखश्री का सान्निध्य पाने के लिये गुजरात के स्वयंसेवक आते रहे। 1 सितम्बर को तो अधिकांश सक्रिय स्वंयसेवक पहुँच गये थे। 2 सितम्बर को काणेटी तथा सुरेन्द्रनगर की स्वयंसेविकाएँ व मातृशक्ति, 3 सितम्बर को शहर तथा आस-पास के गाँवों के सहयोगी, 5 सितम्बर को भावनगर से स्वयंसेविकाएँ तथा मातृशक्ति संघप्रमुखश्री से मिलने पहुँचे। 4 सितम्बर को कार्यालय में निर्मित नए कमरे का उद्घाटन हुआ। आर्य समाज के स्वामी आर्य बन्धु मिलने आए। 6 सितम्बर को धर्म जागरण विभाग के गुजरात प्रभारी सत्यम राव मिलने आए। 7 व 8 सितम्बर को सूरत में विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सम्पर्क किया। श्री अजीतसिंह धोलेरा भी साथ रहे। सूरत में सभी शाखाओं के स्वयंसेवकों से वार्ता की। राजस्थान राजपूत समाज सूरत के पदाधिकारियों के साथ संवाद हुआ। स्वयंसेवकों के परिवारों की महिलाओं से भी चर्चा हुई। क्षत्रिय सम्मेलन आयोजित किया गया। श्री अजीतसिंहजी ने गुजराती महिलाओं से संवाद किया। आगे मुम्बई पहुँचकर वहाँ के कार्यक्रमों में सम्मिलित रहे तथा 11 सितम्बर को जयपुर पहुँचे।

शिविर :

सितम्बर माह में कुल 19 शिविर सम्पन्न हुए जिनमें से तीन शिविर गुजरात में थे। राजस्थान में एक बालिका तथा 15 बालकों के शिविर सम्पन्न हुए। एक शिविर आगे के लिये स्थगित कर दिया गया।

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बाँसवाड़ा) में 19 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश)

कल हमारा यह उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा में प्रारम्भ हुआ। आपका स्वागत किया गया और आपको भी संघ का स्वागत करने के लिये कहा गया। साधना के कुछ, योग के कुछ सूत्र कल आपने जाने। उन पर आचरण करना अब आपके हाथ में है। यह आचरण ही आपके लिये पुरुषार्थ है। व्यवस्था हो गई है, नियति बन गई है, नीति बन गई है अब शेष आपके हाथ में है। आज शिविर के दूसरे दिन साधना सम्बन्धी कुछ अचड़ने आएँगी। उनके संबंध में मैं कुछ बताना चाहता हूँ। भौतिक अड़चनें, मानसिक अड़चनें और आध्यात्मिक अड़चनें आएँगी। मुश्किलें आएँगी, समस्याएँ आएँगी, उनसे मैं सावधान करना चाहता हूँ आपको। हमारे मनीषियों ने बताया है कि हर व्यक्ति के छः दुश्मन हैं, षड़शत्रु। उनसे सदैव सावधान रहना है। जब आप अपना अन्तरावलोकन करेंगे, अपनी समीक्षा करेंगे, अपना स्वाध्याय करेंगे, तो अन्दर देखना ही पड़ेगा। तो सबसे बड़ी बाधा शास्त्रों के अनुसार है काम। काम का अर्थ कामनाओं से है, इच्छाओं से है। कल हमने ईश्वर प्रणिधान की बात सुनी। यहाँ आने के बाद हमने अपने आपको ईश्वर को समर्पण कर दिया है। सारे कार्य वो ही करवा रहा है, वो ही उत्तरदायी है, हम मात्र सोच रहे हैं। हमारी कामना रह नहीं गई है ऐसा मानना चाहिए लेकिन हमारी कामनाएँ रह जाती हैं। अन्तःस्थल में पड़ी रहती हैं, इच्छाएँ रहती हैं। मन की इच्छा, बुद्धि की जिज्ञासा, हृदय की अभीप्सा, प्राण की आकांक्षा यह हमको थोड़ी तकलीफ दे सकती हैं। जैसा कराया जाए वैसा हमको करना है और यदि हममें कोई किसी प्रकार की अन्य इच्छा रह गई तो वो हमारी बाधा बन जाएगी।

दूसरा शत्रु है क्रोध। जिसकी कामनाएँ होगी, यदि उन कामनाओं की पूर्ति नहीं होगी तो फिर क्रोध उत्पन्न होगा। यह शत्रु है, बहुत दुख देता है। गीता के अनुसार काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के द्वार हैं। ये इच्छाएँ हमको नरक की तरफ धकेलती हैं और इन इच्छाओं की पूर्ति न होने के कारण जो हमको क्रोध आता है वह हमको पतन की ओर ले जाता है और लोभ, यह नरक का द्वार है। पहला शत्रु है काम, दूसरा है क्रोध, तीसरा है मद। अहम बुद्धि, मैं हूँ, तो मैं करने वाला हो जाता हूँ। इसको हम भूल नहीं पाते, मैं हूँ। यहाँ मैं हूँ है ही नहीं, हमने अपने आपको समर्पित कर दिया। मेरा अस्तित्व समाप्त हो गया। लेकिन यदि मैं रह गया। यह अहम् बुद्धि रह गई, यही आपके लिये मद बन जाएगा, अहंकार बन जाएगा, घमण्ड बन जाएगा और यह हठ से आपकी साधना में बाधा बन जाएगा। चौथा शत्रु है मोह। देखी, सुनी वस्तुओं से, स्थान से, हमारी आसक्ति हो जाती है, लगाव हो जाता है। इसी को हम मोह के रूप में जानते हैं। इसीलिए कल भी आपको सावधान कर दिया था। सावधानी बरतने के लिए कहा गया था। मोह को छोड़ दें, अपने साथी का भी मोह नहीं होना चाहिए। स्थान का भी मोह नहीं होना चाहिए। यह सब हमको तकलीफ देते हैं। पाँचवा है लोभ। ऐसा ही एक सूत्र कल बताया था अपरिग्रह। संग्रह न करना। यहाँ दूसरे रूप में बताया जा रहा है कि लोभ नहीं करना। चाह ही नहीं रहेगी तो और अधिक की चाह कैसे रहेगी? इतना ही नहीं और होना चाहिए यही शत्रु है। छठा दुश्मन है ईर्ष्या। दूसरों से ईर्ष्या रखना। वो हमसे आगे बढ़ रहा है या उनको मुझसे ज्यादा मिल गया है यह भाव ईर्ष्या पैदा करता है। ये शत्रु ऐसी समस्या उत्पन्न कर देते हैं कि इससे हमारे अन्तरावलोकन में भी बाधा पड़ती है। इसके कारण हमको भौतिक समस्या भी आती है, मानसिक समस्या भी आती है और आध्यात्मिक उन्नति में भी बाधक बनती है।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

धर्म का वास्तविक स्वरूप

– स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज

सम्पूर्ण भारत में अनादि काल से धर्म की एक ही परिभाषा रही है जिसमें ईश्वर एक, साधना एक, अन्त में परिणाम एक- उस ईश्वर में स्थिति, जिसके विधि की जागृति सद्गुरु से है। मनुष्य की संपूर्ण लौकिक समस्याओं का हल, सुखमय जीवन तथा परम श्रेय की प्राप्ति धर्म की देन है। धर्म का शास्त्र स्वयं महायोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त है जिसकी व्याख्या तत्वदर्शी वरिष्ठ महापुरुषों के क्षेत्र की वस्तु है। किन्तु विगत दो हजार वर्षों से मुख्यत: पुष्यमित्र शुंग काल से, जब से धर्म का निर्णय शिक्षाविद् आचार्यों द्वारा होने लगा, धर्म में विकृतियाँ पनपने लगीं। आजकल धर्म के नाम पर देशभक्ति धर्म, सद्व्यवहार धर्म, समाजसेवा को धर्म माना जा रहा है जबकि ये धर्म नहीं हैं। कोई कहता है- वर्ण और आश्रम सनातन धर्म हैं जिसके अनुसार शूद्र वेदवाक्य पर विचार करे तो नर्क जाए। जो उसको उपदेश करे, वह भी नर्क जाए। शूद्र को इस जन्म में भजन करने का, वेद पढ़ने का या ओम् कहने का अधिकार ही नहीं है। वह वनदेवी, वनदेवताओं की पूजा करे। वैश्य लक्ष्मी पूजा करे। क्षत्रिय दुर्गा की पूजा करे। ब्राह्मण सरस्वती की पूजा करे। भगवान की पूजा करने का निर्देश किसी को नहीं है। किसी ने भोजन और जल का स्पर्श कर लिया तो धर्म नष्ट, कोई समुद्र पार चला गया तो धर्म नष्ट! विदेशी जलमार्ग और स्थलमार्गों से आये, खान-पान छुआ तो करोड़ों लोग धर्मभ्रष्ट हो गये। सब आपके सगे भाई हैं। रो-रोकर उन्होंने आपको छोड़ा है और रो ही रोकर आपके पूर्वजों ने उनको छोड़ा है। वह धर्म नहीं था, एक कुरीति थी। यदि वही धर्म था तब तो आज सबने सबको छू लिया, अब सबका धर्म क्यों नष्ट नहीं हो रहा है? विगत हजार वर्षों में हिन्दू ही टूटा है, जुड़ा कोई नहीं। वर्ण को जाति मानने की ही देन है कि लोग हिन्दू धर्म को छोड़-छोड़कर भागते जा रहे हैं। भारत विश्वगुरु कहा जाता है किन्तु भारत के धर्मगुरु विदेशियों को अपने धर्म में स्थान नहीं दे सके।

भगवान महावीर, भगवान बुद्ध और सैकड़ों महापुरुषों ने धर्म बताने का प्रयास किया तो धर्माचार्यों ने कहा कि वे सब नास्तिक हैं। जैन मन्दिर में जाने से धर्म नष्ट बौद्ध में जाने से धर्म नष्ट। समुद्र के लहरों की तरह नष्ट-नष्ट की बाढ़ आ गयी, सुधार का तरीका ही नहीं बचा। उद्धार का तरीका केवल इतना ही कि ब्राह्मण को दान दे दो। स्थितप्रज्ञ विप्र को लोग भूल गये। विप्रत्व का निर्धारण जन्म से होने लगा। साधना के क्रमोन्नत सोपान वर्ण को धर्माचार्यों ने जन्मना जाति-व्यवस्था घोषित कर दिया। इसी को भगवान द्वारा निर्धारित स्वधर्म कहकर चला दिया जिससे मानव-मानव में संघर्ष, घृणा, फूट, राग-द्वेष की भावना पनप गयी। विश्व में धर्म के नाम पर कोई इधर मार-काट कर रहा है, कोई उधर। यह धर्म मृत्यु दे रहा है जबकि धर्म मृत्यु नहीं, जीवन देता है।

इसी क्रम में धर्म के नाम पर मंदिरों के कुछ मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में गये तो शीर्ष न्यायालय ने निर्णय दिया कि हिन्दू तो कोई धर्म नहीं है। यह तो मात्र जीवन-यापन शैली है क्योंकि इसमें एक ईश्वर नहीं है, एक उपासना-पद्धति नहीं है जिसका सब पालन कर सकें, एक धर्मशास्त्र नहीं है जिसे सब मानें, एक धर्मगुरु नहीं है जिससे सभी सुझाव ले सकें। विश्वगुरु की उपाधि से विभूषित भारत के नागरिकों को सुनकर कैसा लगता है कि हिन्दू कोई धर्म है ही नहीं?

धर्म के नाम पर जैसी कुरीतियाँ आजकल हैं, कुछ इसी प्रकार की रूढ़ियाँ श्रीकृष्ण काल में भी थीं जिनमें से कुछेक का प्रभाव अर्जुन पर भी था। महाभारत युद्ध आरम्भ होने से पूर्व दोनों ही सेनाओं में गुरुजनों तथा अपने परिजनों को देखकर उसने कहा-माधव! स्वजनों को मारकर मैं कैसे सुखी होऊँगा? ऐसे युद्ध से तो कुल का संहार हो जाएगा। कुल के क्षय से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, वर्णसंकर पैदा होंगे जो कुल और कुलघातियों को नरक में ले जाने के

लिये ही होता है। कुलक्षय से पिण्डोदक क्रिया भी लुप्त हो जायेगी जिससे पितर गिर जायेंगे। हम समझदार होकर भी ऐसा पाप करने को उद्यत हुए हैं। हमें इससे बचना चाहिए। ऐसा युद्ध करने से सनातन धर्म नष्ट हो जाएगा।

1. गीतोक्त धर्म :

भगवान ने कहा- क्या है सनातन धर्म? अर्जुन ने बताया- ***'कुलधर्माः सनातनाः'*** (गीता, 1/40), ***'जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः'*** (गीता, 1/43)- जातिधर्म सनातन है। कुलधर्म सनातन है। भगवान ने हँसते हुए कहा- ***'कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्'***। (गीता, 2/2) अर्जुन! तुझे इस विषम स्थल में यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? यह न तो कीर्ति बढ़ाने वाला है, न परम कल्याण करने वाला है, न ही वरिष्ठ महापुरुषों ने ऐसा आचरण किया है। ***'अनार्यजुष्टम्'*** (गीता, 2/2)- अनार्यों का यह आचरण तूने कहाँ से सीख लिया? जिसमें कल्याण नहीं, कीर्ति नहीं, सम्भावित पुरुषों ने भूलकर भी जिस पथ पर कदम नहीं रखा, सिद्ध है वह अज्ञान है। तब अर्जुन ने कहा-यदि यह सब अज्ञान है तो ***'कार्पण्यदोषोपहतस्भावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि माँ त्वां प्रपन्नम्।।'*** (गीता, 2/7)- कायरता के दोष से नष्ट स्वभाव वाला ***'धर्मसम्मूढचेताः'*** - धर्म के विषय में सर्वथा मोहित चित्त मैं आपसे पूछता हूँ, जो कुछ निश्चित परम कल्याणकारी हो, वह साधन मेरे लिये कहिए। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण हूँ। मुझे साधिये। केवल शिक्षा न दीजिए बल्कि जहाँ लड़खड़ाऊँ, वहाँ सँभालिए। यहाँ अर्जुन ने पूर्ण समर्पण कर दिया। अभी तक वह श्रीकृष्ण को अपने स्तर का ही समझता था। अनेक विधाओं में अपने को कुछ आगे ही मानता था। यहाँ उसने अपनी बागडोर श्रीकृष्ण को सौंप दिया।

इस प्रकार गीता का पहला प्रश्न धर्म है। अर्जुन की शंका धर्म है। उसी धर्म का भगवान ने गीता में निर्णय दिया। पहले तो अर्जुन तर्क पर तर्क करता चला गया, जब एकादश अध्याय में भगवान ने उसे दिव्य दृष्टि प्रदान की, उसने भगवान को देखा, तब वह समझ पाया कि कुलधर्म सनातन नहीं है। उसने कहा- भगवन्! आप ***'शाश्वतधर्मगोप्ता'*** (गीता, 11/18)- शाश्वत धर्म के रक्षक हैं; ***'सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे'***- आप सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है। इस प्रकार गीता भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन की दृष्टि प्रदान करती है। वह दृष्टि आप सबके लिये सुलभ है।

भगवान ने कहा- अर्जुन! ***'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उपयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।'*** (गीता, 2/16) अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों काल में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। असत्य का अस्तित्व नहीं है। क्या है सत्य? भगवान ने बताया- एक आत्मा अर्थात् परमात्मा ही सत्य है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है। वह शाश्वत है, अजर-अमर है, अपरिवर्तनशील है, वही सनातन पुरुष है। हम-आप कौन हैं? सनातनधर्मी। सनातन कौन है? आत्मा। इसलिए यदि उस आत्मा, परमात्मा के प्रति कोई श्रद्धावान नहीं तो वह धार्मिक भी नहीं है। अतः उस परमात्मा को धारण कर लेना ही धर्म है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- ***'आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्'*** (गीता, 2/29)- कोई विरला महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है, विरला ही इसके रहस्य का कथन करता है, विरला ही सुनता है और बहुत से सुनकर भी नहीं जान पाते क्योंकि उतना समय नहीं दे पाते। अर्थात् वह परमात्मा एक प्रत्यक्ष दर्शन है।

भगवान ने बताया कि वह आत्मा अकाट्य, अशोष्य और अपरिवर्तनशील है किन्तु वह ***'अव्यक्तोऽयम् अचिन्त्योऽयम्'*** (गीत, 2/25) अव्यक्त और अचिन्त्य है अर्थात् जब तक चित्त और चित्त में संकल्प-विकल्प की लहर है, तब तक वह अगोचर है, मन और इन्द्रियों के द्वारा देखा नहीं जा सकता।

अब एक नवीन प्रश्न आ गया कि चित्त का निरोध कैसे हो? इसके लिये योगेश्वर ने कहा-अर्जुन! तू युद्ध कर। क्षत्रिय के लिये युद्ध से बढ़कर कल्याण का अन्य

कोई उपाय नहीं है। यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगे। इस युद्ध में जीतोगे तो महामहिम स्थिति मिलेगी, हारोगे तो देवत्व मिलेगा। जय में सर्वस्व और पराजय में भी देवत्व है। इस प्रकार लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर युद्ध के लिये प्रवृत्त हो। यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोग के विषय में कही गयी। कौन-सी बुद्धि? यही कि अपने बलाबल का निर्णय लेकर, लाभ-हानि का निर्णय लेकर युद्ध में प्रवृत्त होना ज्ञानमार्ग है।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुधियोंगे त्विमां श्रृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।

(गीता, 2/39)

अब तू इसी को निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन जिससे युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को भली प्रकार नष्ट करेगा। स्पष्ट है कि कर्म उसे कहते हैं जो कर्म-बन्धन से छुड़ा दे।

गीतोक्त कर्म में है- ***'नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति'*** (गीता, 2/40) इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं होता। इसे आरम्भ कर दें तो उस पुरुष का और इस क्रिया का कभी नाश नहीं होता। यह कल्याण करके ही छोड़ता है। अभी हुआ नहीं, किन्तु कल्याण का आरक्षण भली प्रकार हो चुका। इस जन्म में जहाँ से साधन छूटता है, अगले जन्म में साधन वहीं से आगे बढ़ते हुए दो-चार जन्मों के अन्तराल से वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परम गति है।

इसी कर्म में है कि- ***'प्रत्यवायो न विद्यते'***- इस कर्म को करने से विपरीत और सीमित फलरूपी दोष भी नहीं मिलता कि आपको स्वर्ग-बैकुण्ठ, रिद्धि-सिद्धि इत्यादि में उलझा कर खड़ा कर दे। अत: ***'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'*** (गीता, 2/40)- इस कर्म से सम्पादित धर्म का स्वल्प अभ्यास जन्म-मृत्यु के महान भय से उद्धार करने वाला होता है, लक्ष्य तक पहुँचा कर दम लेता है। माया स्वरचित तो घटा-बढ़ा सकती है लेकिन यह कर्म भगवान के द्वारा संचालित होता है, माया हस्तक्षेप कर ही नहीं सकती, घटा कहाँ से देगी! इस कर्म को कार्यरूप देना ही धर्म है।

'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन' (गीता, 2/41)- अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में निश्चियात्मिका क्रिया एक है, बुद्धि एक है। तो जो बहुत-सी क्रियाएँ बताते हैं, क्या वे भजन नहीं करते? भगवान कहते हैं- नहीं, वे अविवेकी हैं। अविवेकियों की बुद्धि अनन्त शाखाओं वाली होती है इसलिए वे अनन्त क्रियाओं को गढ़ लेते हैं, दिखावटी शोभायुक्त वाणी में व्यक्त भी करते हैं। उनकी वाणी की छाप जिन-जिनके चित्त पर पड़ जाती है उनकी भी बुद्धि नष्ट हो जाती है; न कि वे कुछ पाते हैं। वे ***'वेदवादरता:'*** (गीता, 2/42)- वेद के वाद-विवाद में, फलासक्ति में अनुरक्त रहते हैं कि इस कर्मकाण्ड का यह फल मिलेगा, ***'स्वर्गपरा'*** (गीता, 2/43)- स्वर्ग को ही सर्वोपरि मानते हैं। वे अनन्त जन्म-मृत्युरूपी फल को प्राप्त होते हैं।

वेद को भली प्रकार आचरण में ढाला, लेकिन जन्म-मृत्यु से पीछा नहीं छूटा। भगवान कहते हैं- ***'त्रैगुण्यविषया वेदा'*** (गीता, 2/45)- अर्जुन! वेद तीन गुणों तक ही प्रकाश करते हैं। इसके आगे का हाल नहीं जानते इसलिए ***'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन'***- तू तीनों गुणों से ऊपर उठ अर्थात् वेदों के कार्यक्षेत्र से आगे बढ़। कैसे बढ़ा जाय? श्रीकृष्ण कहते हैं- ***'निर्द्वन्द्व:'***- सुख-दुख के द्वन्द्व से रहित, नित्य सत्य वस्तु में स्थित और योगक्षेम को न चाहता हुआ आत्म-परायण हो, इस प्रकार ऊपर उठ। प्रश्न स्वाभाविक है कि हम ही उठें या कोई वेदों से ऊपर उठा भी है। श्रीकृष्ण बताते हैं कि जो भी उठता है, ब्रह्म को जानता है; और जो ब्रह्म को जानता है, वह विप्र है। सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर मनुष्य का छोटे जलाशय से जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का वेदों से उतना ही प्रयोजन रहता है। संक्षेप में जो वेदों से ऊपर उठता है, ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण है। ब्राह्मण एक स्थिति है।

भगवान कहते हैं-मुझे गीतोक्त विधि से भजकर लोग स्वर्ग की कामना करते हैं, मैं देता हूँ। भोगने में आता है, और नष्ट हो जाता है। नश्वर ही तो माँगा था। शाश्वत तो

हो नहीं जायेगा। स्वयं आयेगा, सामने से गुजरेगा, स्वर्ग का कार्यकाल पूरा हुआ, नष्ट हो गया तो वहीं पर आ गया जहाँ से साधन आरम्भ किया था। स्वर्ग तो नष्ट हो गया किन्तु उस भक्त का कभी विनाश नहीं होता क्योंकि गीतोक्त विधि से भजकर माँगा है, मुझसे माँगा है। मेरे पथ में आरम्भ का नाश नहीं। माँगी वस्तु मिलेगी, भोगने में आयेगी, साधना यथावत् आगे चलती रहेगी। इस कल्याणकारी कर्म को करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता (गीता, 6/40), अर्जुन! अगले जन्म में उस बुद्धि-संयोग को प्राप्त कर लेता है, साधना यथावत् चलने लगती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- ***'येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते माँ दृढव्रताः।।'*** (गीता, 7/28)- ***'पुण्यकर्मणाम्'***- जो आपको पूर्णत्व प्रदान करे वह पुण्य कर्म कहलाता है; शास्त्रविधि से नियत है तो नियत कर्म; भगवान के निमित्त है तो तदर्थ कर्म; मेरे समर्पण करके चले-मदर्थ कर्म; दुर्लभ मानव तन मिला है तो कर्तव्य पथ यही है इसलिए कार्यम् कर्म! कार्यम् कर्म, गीतोक्त कर्म, नियत कर्म इत्यादि पर्यायवाची शब्द हैं। अस्तु, पुण्य कर्म को करने वाले, व्रत में दृढ़ रहकर भजने वाले जिन भक्तों का इच्छा और द्वेष से उत्पन्न अज्ञान नष्ट हो गया है, जो जरा-मरण से छूटने के लिये प्रयत्नशील हैं, वे संपूर्ण ब्रह्म को जानते हैं। गीतोक्त कर्म कोई ऐसी वस्तु है जो संपूर्ण ब्रह्म को विदित करा देता है। वे संपूर्ण कर्म को जानते हैं, संपूर्ण अध्यात्म को जानते हैं। हर जीव माया के आश्रित है। माया जैसा चाहती है, नाच नचाती रहती है। उसके पंजे से निकालकर आत्मा की अधिकृत भूमि में खड़ा कर देना अध्यात्म की प्रवेशिका है। आत्मा के ही संरक्षण में चलते हुए परम तत्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन और स्थिति दिलाना अध्यात्म की पूर्णता है। उसमें आत्मा का आधिपत्य पूर्ण रूप से व्याप्त हो गया। वह साधक संपूर्ण अध्यात्म, संपूर्ण अधिदैव और संपूर्ण अधियज्ञ सहित मुझको जानता है। मुझे जानकर मुझमें स्थित हो जाता है, वह मेरे सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। जैसा भगवान वैसा ही वह साधक। इस प्रकार गीतोक्त नियत कर्म की देन है संपूर्ण कर्म, संपूर्ण ब्रह्म, संपूर्ण अध्यात्म, संपूर्ण अधिदैव, संपूर्ण अधियज्ञ सहित भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन। मन का निरोध क्या देश की व्यवस्थाओं को सुचारू करने से होगा? व्यवसाय या अन्य किसी भौतिक कार्य से मिलेगा? वास्तव में कर्म एक साधन पद्धति है।

इसी को पुनः स्पष्ट करते हुए भगवान ने कहा- ***'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।'*** (गीता, 4/16) कर्म क्या है? अकर्म क्या है?- इस सम्बन्ध में विवेकी पुरुष भी मोहित हैं, इसलिए मैं तुझे उस कर्म का रहस्य भली प्रकार बताऊँगा जिसे जानकर तू ***'मोक्ष्यसेऽशुभात्'***- अशुभ अर्थात् संसार-बन्धन से भली प्रकार मुक्त हो जायेगा। कर्म कोई ऐसी वस्तु है जो संसार-बन्धन से मोक्ष देती है।

कुछ भी कर डाला कर्म नहीं है। कर्म की एक नियत विधि है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- ***'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।'*** (गीता, 3/8)- अर्जुन! शास्त्रविधि से निर्धारित किये हुए कर्म को कर। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। यदि कर्म नहीं करोगे तो तुम्हारी शरीर-यात्रा भी सिद्ध नहीं होगी। कर्म कोई ऐसी वस्तु है जो शरीर-यात्रा को पूर्ण करता है। यह आत्मा जन्म-जन्मान्तरों से शरीर यात्रा ही तो कर रहा है, इस शरीर से उस शरीर में ही तो जा रहा है। कर्म कोई ऐसी वस्तु है जो यह यात्रा पूर्ण करती है। यदि एक जन्म और लेना पड़ा तो एक पड़ाव तक की यात्रा बाकी है; पूर्ण कहाँ हुई? अर्थात् भविष्य में जन्म न लेना पड़े, गर्भावास से मोक्ष मिल जाये, कर्म की यही देन है। ***(क्रमशः)***

संकीर्ण संस्कार के गहन अंधकार में एक जीवित धर्म को कब तक छिपाकर रख सकता है कोई?
उदार उन्मुक्त धर्म को घेरे में नहीं रखा जा सकता।

- फणीश्वरनाथ रेणु

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

एक ओर पूज्य श्री तनसिंहजी ने 22 दिसम्बर, 1946 को श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना कर बालकों व युवाओं को संस्कारित करने के लिये शिविरों में सामुहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली द्वारा उनमें संस्कार निर्माण का काम कर रहे थे, तो दूसरी ओर एक क्षत्रिय सैनिक संघ था जो युवाओं को सैनिक शिक्षण-प्रशिक्षण देने का काम कर रहा था।

ठिकाना खूड़ के ठाकुर श्री मंगलसिंहजी जयपुर रियासत के प्रथम श्रेणी के जागीरदार थे। जयपुर रियासत के सिरायत ठिकाणों में उनका ठिकाणा आता था। उनका जयपुर रियासत में सम्मानजनक स्थान था। वे अपने जीवन में कुछ कर गुजरने वाले जीवट, हिम्मती व उत्साही व्यक्ति थे। उन्होंने ठाकुर श्री मदनसिंहज दांता, श्री मूलसिंहजी टांई, इत्यादि के साथ मिलकर क्षत्रिय सैनिक संघ खड़ा किया।

भारत आजाद हुआ ही था। भारत बंटवारे में हिन्दू-मुस्लिम दंगों के घाव ताजा थे, कारण वातावरण ही ऐसा बन गया था जिसकी वजह से सैनिक संघ की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। राजपूत युवाओं को सैनिक शिक्षण देने की धुन उनमें सवार हुई। सैनिक संघ खड़ा कर राजपूत युवाओं को अस्त्र-शस्त्र चलाने की जानकारी देना, घुड़सवारी करना, मोटर गाड़ी चलाना, तलवार-बन्दूक चलाने का सैनिक प्रशिक्षण देना उनका हेतु था।

क्षत्रिय सैनिक संघ के प्रति राजपूत युवाओं की रुचि बढ रही थी। खूड़ ठाकुर श्री मंगलसिंहजी व दांता ठाकुर श्री मदनसिंहजी ने पूज्य श्री तनसिंहजी से सम्पर्क कर सैनिक शिविरों में आने के लिये आमंत्रित किया। इसकी बदौलत कुचामन में मई, 1948 में भैरूं तालाब पर श्री क्षत्रिय युवक संघ का उच्च प्रशिक्षण शिविर व क्षत्रिय सैनिक संघ दोनों शिविर सम्मिलित लगे। क्षत्रिय सैनिक संघ में घोड़ा, गाड़ी, बन्दूक, तलवार वगैराह अस्त्र-शस्त्र थे। क्षत्रिय सैनिक संघ वाले बन्दूक, तलवार धारण किए हुए रहते थे। राजपूत युवकों को सैनिक प्रशिक्षण देना, घुड़सवारी, तलवार-बन्दूक चलाना, मोटर गाड़ी चलाना और अस्त्र-शस्त्रों सम्बन्धी अन्य जानकारी देना उनका मुख्य कार्य था। एक दिन कुचामन राजा साहब के शिकार बाड़ी में शस्त्र ट्रेनिंग में फायरिंग करवाया। चांदमारी के अतिरिक्त फौज से सेवानिवृत रिसलदार मेजर की देखरेख में घुड़ सवारी का अनुभव अधिकतर स्वयंसेवकों के लिये एक नवीन तथा रोमांचक कार्यक्रम था। खूड़ ठाकुर साहब की तरफ से यह प्रस्ताव था कि क्षत्रिय युवक संघ एवं क्षत्रिय सैनिक संघ को मिलाकर संस्था का कोई बीच का नामकरण कर दिया जावे। पूज्य श्री इस पर काफी गम्भीरता से सोचते रहे। विचार-विमर्श दोनों तरफ से होता रहा, पर बात बनी नहीं। इसके बाद बैण्यांकाबास में भी श्री क्षत्रिय युवक संघ व क्षत्रिय सैनिक संघ का सम्मिलित शिविर सम्पन्न हुआ। इन दोनों शिविरों के बाद आपस में तालमेल बैठा नहीं।

भारत-पाकिस्तान के बंटवारे में जो खून खराबा हुआ, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप क्षत्रिय सैनिक संघ की आवश्यकता तो महसूस की और लोगों का, खास कर राजपूत युवाओं का इस ओर रुझान भी बढा पर समय गतिशील व परिवर्तनशील है, भविष्य पर दृष्टिपात करने से साफ जाहिर होता है कि आने वाले इस समय में क्षत्रिय सैनिक संघ के ध्येय से भविष्य की समस्याओं के समाधान में यह कारगर नहीं हो सकता। आने वाले समय में समय की माँग के अनुरूप क्षत्रिय सैनिक संघ का न तो हेतु था और न समय की माँग को पूरा करना उनके वश की बात थी। पूज्य श्री तनसिंहजी दूरदर्शी थे, भविष्य की उन्हें समझ थी, उन्हें पता था कि आगे आने वाला समय तोप, तलवार व बन्दूक का नहीं है, विचार क्रान्ति का है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने अस्त्र-शस्त्र प्रशिक्षण की आवश्यकता से अधिक विचार क्रान्ति को महत्त्व दिया।

चारों ओर का वातावरण प्रदूषित व विषमय होने से सुशासन देने वाला क्षत्रिय भी इससे बच नहीं पाया और क्षत्रिय वर्ग तमोगुण से आक्रान्त हो गया और उनके जीवन में त्याग व उदारता की जगह निजी स्वार्थ ने ले ली, स्वाभिमानी दिल में व्यक्तिगत तुच्छ अहंभाव पनप गया। विचारों में मलिनता व विकृति आ गयी। ऐसे में अस्त्र-शस्त्र के प्रशिक्षण से सकारात्मक परिणाम मिलना नामुमकिन ही था। अस्त्र-शस्त्र किस पर चलाना, किस पर नहीं, कब उपयोग में लेना, कब नहीं, यह समझ तमोगुण से आक्रान्त व्यक्ति में नहीं हो सकती। मलिन विचार और विकृत मानसिकता वालों को सही पथ पर लाने के लिये उनका शुद्धिकरण करना आवश्यक हो गया था, इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ में सामुहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली को अपनाया ताकि उन्हें संस्कारित कर उनका शुद्धिकरण किया जा सके और समाज की टूटती परम्पराओं को रोका जा सके, जन मानस में क्षीण होते हमारे वर्चस्व को पुन: उभारा जा सके, सुप्त हृदयों में चेतना और जागृति का मंत्र फूंक कर जर्जरित होते समाज का सुदृढीकरण किया जा सके, हारे हुए अनेकों अर्जुनों के हाथों में गांडीव थमा कर कर्तव्य के पावन पथ पर उन्हें अग्रसर किया जा सके, पथ विचलित व धर्म विमुख क्षत्रियों को संस्कारित कर पुन: स्वधर्म पथ पर आरूढ़ किया जा सके।

संस्कारहीनता की वजह से मनुष्य पशु बनता जा रहा है और वही इस पर्यावरण व चारों ओर के वातावरण को दूषित करने वाला है। दिनोंदिन भोग के मार्ग पर बढने वाले मनुष्यों की सोच, उनकी विचारधारा और उनके जीवन दर्शन में आमूलचूल परिवर्तन लाना होगा। उनके आचरण को बदलकर उन्हें चरित्रवान बनाना होगा, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा को सामाजिक महत्त्वाकांक्षा में बदलना होगा ताकि सामाजिक ध्येय ही उनके जीवन का उद्देश्य हो जाए। यह प्रयास सर्वाधिक आवश्यक है। इस जमाने में तो यह प्रयास श्री क्षत्रिय युवक संघ के अलावा अन्य कोई करने में सक्षम नहीं लगता इसलिए श्री क्षत्रिय युवक संघ ने यह कार्य करने का बीड़ा उठाया और इस हेतु को पूरा करने में लगा हुआ है।

संसार में सबसे कठिन कार्य मनुष्यों में सुसंस्कारों का निर्माण करना है और वह भी आज के इस कलुषित वातावरण में, जो सर्वथा संस्कार निर्माण के लिये एक दम विपरीत है लेकिन पूज्य श्री तनसिंहजी की तपस्या व उनके निष्ठावान अनुचरों की सक्रियता से संस्कार निर्माण का कार्य निरंतर प्रसारित होता जा रहा है।

संस्कार निर्माण प्रक्रिया में सद्संस्कारों को बलवती बनाना और कुसंस्कारों को निर्मूल कर निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करते हुए ईश्वर को प्राप्त करना ही श्री क्षत्रिय युवक संघ का हेतु है। संघ मार्ग में व्यष्टि से समष्टि और समष्टि से परमेष्टि की राह संघ साधना में समाहित है। संघ साधना में हमारा व्यक्तिगत स्वार्थ, सामाजिक स्वार्थ में निमज्जित हो जाता है। यही संगठन का सच्चा आधार है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से सुप्त क्षत्रिय समाज में जागरण का शंख नाद किया। जागरण का उच्चतम शिखर है ईश्वर को प्राप्त करना, यही सार्थक जीवन का अन्तिम पड़ाव है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के मार्ग पर चलकर हम अपने समस्त सांसारिक उत्तरदायित्वों को वहन करते हुए ईश्वर की ओर बढते रहकर इस दुर्लभ क्षत्रिय जीवन को सार्थक बनावें, इसी चाह से पूज्य श्री तनसिंहजी ने संघ की स्थापना की थी। श्री क्षत्रिय युवक संघ लौकिक और पारलौकिक दोनों दायित्व निभाकर जीवन को सार्थक बनाता है। निराश अर्जुन को भगवान श्री कृष्ण ने जो कल्याण का मार्ग बताया, श्री क्षत्रिय युवक संघ उसी गीता के मार्ग पर आधारित है। *(क्रमश:)*

विद्यार्थी अवस्था में संयम की महान विद्या सीख लेनी चाहिए। जब आप संयम की शक्ति का संग्रह कर लेंगे तो एकाग्रता भी, जो जीवन की एक महान् शक्ति है, पालेंगे।

– विनोबा भावे

अमर ज्योति आयुवान

– धौंकलसिंह चरला

विशिष्ट मानव का प्रादुर्भाव साउद्देश्य होता है। वह अपने साथ विशिष्ठ गुण लेकर ही उत्पन्न होता है, जो उसके बाल्यकाल से ही परिलक्षित होने प्रारम्भ हो जाते हैं। श्री आयुवानसिंहजी ऐसे ही व्यक्ति थे।

श्री आयुवानसिंहजी से मेरा सम्पर्क सन् 1945-46 में हुआ था। मैंने उन्हें समीप से देखा और परखा, फलत: हमारी निकटता बढ़ती ही गई और धीरे-धीरे हम दोनों साथी से सहयोगी बन गये।

उदास मुख गम्भीर मुद्रा, विचारों में तन्मय किसी अप्राप्य वस्तु की खोज में लगे उस व्यक्ति से मैंने प्रश्न किया,-''आगे क्या करने का विचार है?''

महान व्यक्तित्व प्रकट हो गया। स्वयं के भविष्य की चिन्ता नहीं, स्त्री-बच्चों का मोह नहीं, सुख-सम्पत्ति की चाह नहीं, पद-प्रतिष्ठा का लोभ नहीं और न था वैभव एवं ऐश्वर्य का सुनहरा सपना, वहाँ तो केवल और केवल मात्र यही चिन्ता थी कि राजपूत जाति का क्या होगा? उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते, खाते-पीते केवल एक ही लगन, एक ही विचार, एक ही धुन बस यही थी।

भावनाएँ विचारों में परिणित हो चुकी थी, उद्देश्य स्पष्ट हो चुका था और लक्ष्य था निर्धारित मंजिल की ओर कदम बढता ही गया। पतनोन्मुख, आत्म दुर्बलता से ग्रसित, स्वाभिमान विसर्जित, परिस्थितिजन्य विवशता से दीन-हीन, अतीत से अनभिज्ञ, वर्तमान से भयातुर एवं भविष्य से निराश राजूपत जाति में विचार-क्रांति का श्रीगणेश करना ही प्रथम सोपान बना। मनसा-वाचा-कर्मणा: इस महान व्यक्ति ने इस हेतु कुछ भी उठा नहीं रखा। वर्तमान की वर्त्तिका को अतीत की आग से प्रज्वलित करके भविष्य को आलोकित कर राजपूत जाति का पथ-प्रदर्शन करने के लिये ही यह अमर ज्योति उत्पन्न हुई।

सन् 1949 में मैं बीकानेर से जयपुर आ गया था। जयपुर की उस समय की उजड़ बस्ती, ब्रह्मपुरी में मेरा निवास स्थान था। मैं पहाड़ की तलहटी में एक ऐसे भग्नावशेष खण्डर में जाकर रहा था, जिसमें मेरे निवास के तीन वर्ष पहले एक सिंहनी ने अपने तीन बच्चों को जन्म दिया था। इससे स्वत: ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह स्थान कितना निर्जन था। सन् 1953 में मैं यहीं से 'राजस्थान ग्राम्य संघ' के आन्दोलन का संचालन कर रहा था।

10 मई सन् 1954 को रात्रि के साढे नौ बजे किसी व्यक्ति ने मकान के बाहर से मुझे आवाज दी। चिर परिचित स्वर था, दूसरी मंजिल की खिड़की से बाहर देखा श्री आयुवानसिंहजी ही थे। ऊपर आगये और बोले एक आवश्यक विचार-विमर्श करना है, जरा एकान्त में चलें। मैं हंस पड़ा और कहा कि इस स्थान के अलावा जयपुर में तो एकांत मिलना दुर्लभ ही है।

अन्तत: तीसरी मंजिल की फूटी मेड़ी में पहुँचे जहाँ गम्भीर मंत्रणा प्रारम्भ हुई जो निम्न थी-

''18.5.54 से धारासभा का सत्र प्रारम्भ हो रहा है, जिसमें पाँच हजार से नीची आय समूह के छोटे जागीरदारों की जागीरदारी समाप्ति का संशोधन पेश होगा।''

''हाँ मालम है।''

''उन छोटे भूमिहीनों का क्या भविष्य होगा?''

''बड़ी कठिन समस्या है।''

''हमें कुछ करना चाहिये।''

''क्या करें?''

''आन्दोलन, अहिंसक।''

''बिना तैयारी, बिना संगठन, कैसे संभव होगा?''

''असम्भव कुछ नहीं होता। आप तो नाम बताइये कि संगठन का नाम क्या हो?''

''भूस्वामी संघ।''

श्री आयुवानसिंहजी उछल पड़े और आगे क्या कुछ हुआ सो सर्वविदित है। सन् 1954 से 1956 तक राजपूत जाति में जागरण का शंखनाद फूंकने वाला यही व्यक्ति था,

जिसने लाखों की संख्या में समाज के सोये व्यक्तियों को सचेत किया और युगधर्म के अनुसार उन्हें अपने अधिकारों के लिये लड़ने को प्रेरित किया।

श्री आयुवानसिंहजी समाज की पीड़ा से सदैव पीड़ित रहते थे। धुन के पक्के, बात के धनी, कर्तव्यनिष्ठ एवं महान विचारक के साथ ही वे एक कुशल संगठनकर्ता भी थे जिसका ज्वलंत उदाहरण हम भूस्वामी संघ एवं संघ के रूप में देख चुके हैं, परन्तु एक क्षत्रियो-चित विशेषता जो उनमें थी, उस का आभास शायद कतिपय साथियों को ही हुआ होगा, वह थी-बहादुरी।

अदम्य उत्साह, साहस, वीरता, धीरता के साथ बलिदान होन को ही बहादुरी कहते हैं। श्री आयुवानसिंहजी ने एक ऐसा ही कार्य कर दिखाया जिसका स्मरण आते ही आज भी रोमांचित हो उठते हैं। महान् आश्चर्य होता है और सुनने वालों को विश्वास तक होना कठिन है कि क्या ऐसा भी कोई कर सकता है, परन्तु वास्तव में श्री आयुवानसिंहजी की सूझबूझ से यह असंभव भी संभव हो सका। उस कार्य को करने वाले केवल दो व्यक्तियों में से एक थे स्वयं श्री आयुवानसिंहजी। यह कार्य ऐसा था कि जिसके करने से मृत्यु समक्ष खड़ी थी।

समाज-हित के उपर्युक्त महान कार्य के फलस्वरूप समाज के लाखों व्यक्ति लाभान्वित हुए और आज भी हो रहे हैं और भविष्य में भी लाभ उठाते रहेंगे। परन्तु उस महान मूक समाज हितैषी ने कभी किसी को आभास तक नहीं होने दिया कि यह सब उसकी देन थी, हुतात्मा! तू धन्य है।

श्री आयुवानसिंहजी ने राजपूत समाज को वर्तमान आत्म लघुत्व की हीन मनोवृत्ति को त्यागने का आह्वान किया, स्वाभिमान, स्वधर्म को पहचानने को कहा। आत्मबल, चरित्रबल, नैतिक बल धारण करने को पुकारा और व्यक्ति को समष्टि में समाहित करके समाजहित एवं राष्ट्रहित के लिये सर्वस्व बलिदान करने के लिये ललकारा।

वर्तमान में भटकी एवं भूखी राजपूत जाति के लिये सच्चा पथ-प्रदर्शक, मार्गदृष्टा एवं दिशा निर्देशक यदि कोई हुआ है तो हमें केवल इसी महान व्यक्ति का नाम लेना पड़ता है, जिसने क्षात्रधर्म की सही व्याख्या करके सबका संशय दूर करा दिया है जो स्वार्थवश भ्रमित हो रहे थे। वस्तुत: राजपूत वही है जो स्वार्थ से ऊपर उठकर पीड़ित की रक्षा करता है एवं दोषी को दण्डित करता है, इस कार्य में जातिभेद, वर्णभेद एवं लिंग भेद बाधक नहीं होते, यहाँ तक कि पशु-पक्षी, गाय एवं कबूतर की रक्षा के लिये महाराजा दिलीप एवं महाराजा शिवि ने अपना बलिदान तक कर डाला, जिसका इतिहास साक्षी है।

श्री आयुवानसिंहजी से मेरी अन्तिम भेंट झोटवाड़ा में हुई थी, जब वे असाध्य रोग से पीड़ित होकर स्वामी देवीदासजी से चिकित्सा करा रहे थे। वे रुग्णावस्था के कारण क्षीण अवश्य हो गए थे परन्तु ओज, तेज, दृढता एवं आत्मबल क्षुण्ण था। मेरे नेत्र अश्रुपूरित थे और वे थे मूक एवं निश्चल।

श्री आयुवानसिंहजी का पर्थिव शरीर अवश्य भष्मीभूत हो गया परन्तु उनकी 'अमर ज्योति' राजूपत समाज का सदैव ही पथ प्रदर्शन करती रहेगी यह मेरी दृढ मान्यता है। श्री आयुवानसिंहजी द्वारा लिखित साहित्य का समाज में अधिक से अधिक प्रचार होना आवश्यक है जो अंधकार को मिटाकर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने में सहायक होगा।

मुझे उनकी मृत्यु पर दुख इस बात का हुआ कि जल्दी बहुत की, अर्थात्-

कारज करण हो घणू वेगा कर्‌यो विहान।
थोड़ी लेकर आवियो आयु आयुवान।।

✻

सत्य के प्रहार से दोषी व्यक्ति सर्प की भाँति क्रुद्ध हो उठता है। उसकी आँखें अंगारे-सी लाल हो उठती हैं किन्तु सत्य का आघात सह कर संयत रहना ही महापुरुषों का स्वभाव है।

- हरिकृष्ण प्रेमी

गतांक से आगे

आध्यात्मिक अनुभूतियों की सत्यता

– स्वामी यतीश्वरानन्द

सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति का प्रभाव :

सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति का मूल्यांकन उसके परिणाम या फल से होता है। दर्शन तथा अन्य आध्यात्मिक अनुभूतियों से चरित्र में संपूर्ण रूपान्तरण होना चाहिए तथा उनसे साधक को अधिक बलवान, पवित्र और दूसरों के प्रति उदार होना चाहिए। उनसे साधक में नयी आशा का संचार होना चाहिए जो उसके कर्मों में परिलक्षित होनी चाहिए। सत्रहवीं सदी के महान् कार्मेलाईट योगी, संत जॉन आफ द क्रास ने सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में कहा है :

वे आत्मा को असाधारण रूप से समृद्ध करती है।... उनमें से एक ही, एक बार में जीव के ऐसे किसी दोष विशेष को दूर करने के लिये पर्याप्त हो सकती है, जिस दोष को दूर करने के लिये उसने व्यर्थ प्रयास किया हो तथा उसे गुणों और अतिमानवीय उपहारों से पूर्ण कर देती है।

पश्चिम में प्रबल कल्पनाशक्ति सम्पन्न एक महिला ने मुझसे कहा कि उसे श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ है। एक अन्य युवक को, जो एक लड़की से प्रेम करता था, ध्यान के समय उस लड़की के ''दर्शन'' होते थे तथा उन्हें वह गलती से जगदम्बा की अभिव्यक्तियाँ समझता था। मुझे इन लोगों को स्पष्ट रूप से यथार्थ कहना पड़ा था कि वे लोग अपनी अतिस्पष्ट कल्पना के ही शिकार हुए हैं। कई प्रकार के दर्शन होते हैं। कुछ स्पष्ट कल्पना के परिणाम होते हैं तथा केवल वैयक्तिक होते हैं। दूसरे संवेदनशील मन के द्वारा प्रत्यक्षीकृत सूक्ष्म सत्यों की बाह्य अभिव्यक्तियाँ होती हैं। उनकी उपयोगिता उनके परिणामों से निर्धारित की जानी चाहिए। हेल्युसिनेशन या दृष्टिभ्रम में अनुभव या प्रत्यक्ष के पीछे कोई सत्य नहीं होता तथा वे रोगग्रस्त स्नायुओं अथवा विकृत मस्तिष्क के कारण होते हैं। मनोजगत की अनुभूतियाँ यथार्थ होते हुए भी नित्य परिवर्तनशील सूक्ष्म जगत् से सम्बन्धित होती हैं तथा उनका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं होता। इसके विपरीत वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति में हम अपरिवर्तनशील नित्य सत्ता के सीधे सम्पर्क में आते हैं तथा वह हमारे जीवन को परिवर्तित कर देती है। वह हमारे चरित्र को, हमारी चेतना को और संसार के प्रति हमारे दृष्टिकोण को परिवर्तित कर देती है। एक बार स्वामी विवेकानन्द ने एक खरी-खोटी किन्तु अत्यन्त सार्थक बात कही थी, ''जो लोग यह कहते हैं कि उन्होंने श्रीरामकृष्ण को देखा है लेकिन उनकी पवित्रता, त्याग और भक्ति के कुछ अंश को आत्मसात नहीं किया है, उनका दर्शन मानो एक बन्दर को देखने के समान है।''

साधक को आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिये उतावला नहीं होना चाहिए। जब मन प्रस्तुत होगा तब उचित समय पर वे उपस्थित होंगी। तब तक साधक के लिये अपने जीवन में परिवर्तन लाना ही श्रेयस्कर है। आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हो रही हैं-ऐसी व्यर्थ कल्पनाओं से जीवन को बर्बाद करने के बदले पवित्र, शान्त और धीर चरित्र का निर्माण करना कहीं अधिक अच्छा है। जब मैं पाश्चात्य देशों में था तो मेरी मुलाकात सुनियोजित साधना द्वारा लाभ उठाने के इच्छुक अच्छे स्त्री-पुरुषों से हुई थी। स्विट्जरलैण्ड-वासी एक महिला में अद्भुत पवित्रता, शान्ति और आध्यात्मिक स्पन्दन थे, लेकिन वह दिवास्वप्न देखती थी। उसकी ऊर्जा एक घूर्णिवात में फँस गयी थी। उसे एक मनोचित्सिक के पास ले जाया गया, लेकिन वह उसकी कोई सहायता नहीं कर सका। उसने मुझे अपनी आन्तरिक अनुभूतियों के बारे में लिखा। मैंने उसे कुछ आध्यात्मिक निर्देश दिए, जिनसे उसे आश्चर्यजनक लाभ हुआ। हेग में मैं एक हॉलण्डवासी युवक से मिला, जिसे तूष्णी स्थिति का एक विचित्र अनुभव हुआ था, लेकिन उसके बाद वह नष्ट हो गया था। वह उस शान्ति को नियमित साधना द्वारा पुन: प्राप्त करने को आतुर था। मैंने उसे तथा उसकी पत्नी को उचित तरीके से ध्यान करने को कहा, जिससे उन्हें बहुत लाभ हुआ।

एक अतिसुसंस्कृत महिला ने, जो स्विट्जरलैण्ड के एक विश्वविद्यालय के प्राध्यापक की पत्नी थी, ''स्वामी ब्रह्मानन्द के उपदेश'' (*Spiritual Teachings of Swami Brahmananda*) पुस्तक पढ़ी थी। वह मुझसे मिली और कुछ प्रश्न किए। मैंने उसे बहुत हद तक आध्यात्मिक रुचिसम्पन्न पाया, लेकिन वह जीवन की समस्याओं का सामना नहीं कर पा रही थी। मैंने उसे अपने आन्तरिक और बाह्य जीवन में संतुलन स्थापित करने तथा ''सांसारिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन की समान बातों'' के प्रति निष्ठावान होने की सलाह दी थी। मैंने उसे कर्म और उपासना को एक साथ करने की तथा अपनी आत्मा को भगवन्नाम के संगीत से परिपूर्ण करने की सलाह दी। उसने निष्ठापूर्वक संघर्ष किया और उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ।

एक प्रोटेस्टेण्ट पादरी रोमाँ रोला की-''द लाइफ आफ श्रीरामकृष्ण'' (THE LIFE OF SRI RAMAKRISHNA) पुस्तक पढ़कर मेरे पास आया। वह आध्यात्मिक जीवन के विषय में व्यावहारिक निर्देश चाहता था और इस विषय में बहुत निष्ठावान था। मेरी उससे कई बार बातचीत हुई। मैंने उसे सलाह दी कि सर्वप्रथम यह पता लगाए कि वह वस्तुत: कहाँ खड़ा है और उसके बाद मेरे द्वारा बताए सरल निर्देशों का पालन करे। उसने सहयोग किया और शीघ्र ही नयी आन्तरिक समरसता की उपलब्धि की। उसके मित्रों ने कहा कि उसके प्रवचन पहले से अच्छे हो गए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पाश्चात्य देशों में योग की साधना नहीं की जा सकती। अनेक वर्षों के अनुभव के बाद मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह सत्य नहीं है। पश्चिम में मुझे अनेक युवकों से मिलने का सौभाग्य हुआ था, जिनके मन उच्चतर स्तर पर उन्नीत हुए थे। उपयुक्त व्यक्तिसे मुलाकात होने पर विश्वस्त हुए बिना नहीं रहा जा सकता। मैं ऐसे अनेक युवा व्यक्तियों से मिला, जिन्होंने साधना द्वारा शान्ति और आनन्द प्राप्त किया था। निरंतर की गई साधना का परिणाम कोई भी व्यक्ति अनुभव कर सकता है, चाहे वह पूर्व में हो या पश्चिम में। भगवान् मनुष्य की आन्तरिक लालसा देखते हैं, उसकी बाहरी पोशाक अथवा आदतों को नहीं।

आध्यात्मिक अनुभूतियों के प्रकार :

आध्यात्मिक अनुभूतियों की कोई सीमा नहीं है; उनके अनन्त प्रकार हैं। इनमें से कुछ निम्न कोटि की है; ये सच्ची आध्यात्मिक अनुभूतियों के बदले मार्ग में लगे सूचकों की तरह होती हैं। यदि मन समुचित रूप से सधा हो तो अतीन्द्रिय स्पन्दनों को सुना जा सकता है। इन्हें स्थूल कर्णों से नहीं सुना जा सकता है। वे मन के भीतर सुनाई देते हैं। कभी-कभी तुम दूर बज रही घण्टियों की झंकार-सी सुन सकते हो। वे निर्जन स्थान में विशेषकर गम्भीर रात्रि में आसानी से सुनी जा सकती है। जब मैं मायावती (हिमालय में है) में था, तब उन्हें सुना करता था। यहाँ विस्बाडन में भी इसे सुनता हूँ। जिस प्रकार पत्थर फेंकने पर तालाब में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार कभी-कभी अन्तराकाश की गहराई से उठ रहे कुछ स्पन्दनों का अनुभव किया जा सकता है। एक विशेष प्रकार के ध्यान की स्थिति में विराट् मन का चिरन्तन स्पन्दन, अनाहत ध्वनि, सुनी जा सकती है।

और फिर रहस्यमय ज्योति की अनुभूति है। यह अन्तर्ज्योति चैतन्य की ज्योति है। इनमें से कुछ अनुभूतियाँ अच्छी हैं क्योंकि वे यह बताती हैं कि तुम्हारा मन अधिक एकाग्र हो रहा है। लेकिन इसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। यदि तुम महत्त्व दोगे तो तुम बँध जाओगे। तुम अपना लक्ष्य भूलकर अवान्तर आकर्षणों में आसक्त हो जाओगे। जैसा मैंने बार-बार कहा है, केवल एकाग्रता की अधिक उपयोगिता नहीं है। मात्र एकाग्रता में आध्यात्मिक विषय का अभाव भी हो सकता है। हमारा लक्ष्य आध्यात्मिक होना चाहिए। यदि हम कोई रहस्यमय ध्वनि सुनें तो हमें उसके कारण को खोजना चाहिए; यदि हम कोई ज्योति देखें तो हमें उसके उत्स को खोजना चाहिए। परमात्मा, मनोजगत् की इन सभी घटनाओं का कारण है और वही हमारा लक्ष्य है। एक सच्चे साधक को ऐसी निम्न कोटि की अनुभूतियाँ होने पर उनकी उपेक्षा करनी चाहिए, उसे उनके बारे में दूसरों से बात नहीं करनी चाहिए और इस तरह दूसरों को भी भ्रमित नहीं करना

चाहिये। जप और ध्यान करने समय केवल इष्ट-देवता का चिन्तन करो, जो चैतन्य और आनन्द के विग्रह हैं। मनोजगत्के इन अनुभवों का चिन्तन मत करो।

अधिकांश साधक अपनी भावनाओं को केन्द्रित करने के लिये एक ईश्वरीय-पुरुष अथवा स्त्री विग्रह के बिना ध्यान नहीं कर सकते। उन्हें ईश्वर के रूप से प्रारम्भ करना चाहिए तथा उसको कल्पना में स्पष्ट तथा चैतन्य देखना चाहिए। रूप हममें दैवी गुणों को जाग्रत करता है और ज्यों-ज्यों हमारा ध्यान गहरा होता है, त्यों-त्यों हम इष्टदेवता की चेतना के संस्पर्श में आने लगते हैं। इष्टदेवता में हम व्यष्टि और समष्टि चेतना के बीच की कड़ी पाते हैं। उसके बाद हम उसी कड़ी को अपने भीतर प्राप्त करते हैं। बाद में हमारी चेतना व्यापक होने लगती है और हम व्यष्टि को समष्टि की अभिव्यक्ति समझने लगते हैं। अन्त में व्यष्टि और समष्टि परमसत्ता में विलीन हो जाते हैं, जो एकमेवाद्वितीय कहलाती है।

बाद में और प्रगति करने पर जो निराकार, साकार के रूप में अभिव्यक्त होता है, वही हमारी अनुभूतियों का केन्द्र हो जाता है। हम अपनी आत्मा तथा अन्य सभी की आत्माओं को एक अखण्ड चैतन्य की अभिव्यक्तियों के रूप में अनुभव करने लगते हैं। हम सभी प्राणियों में परमात्मा का दर्शन करते हैं तथा सभी प्राणियों की सेवा करने की गहरी आन्तरिक प्रेरणा का अनुभव करते हैं। अपने में नैतिक द्वन्द्व पैदा किए बिना हम सभी के प्रति गहरे प्रेम और करुणा से पूर्ण हो जाते हैं।

सर्वप्रथम हम विराट् स्पन्दनों के संस्पर्श में आते हैं, उसके बाद विराट् मन के संस्पर्श में आते हैं और फिर हम अपनी सीमित चेतना और अनन्त चैतन्य के संयोग का अनुभव करते हैं। एक दृष्टिकोण से ये सब एक के भीतर एक समकेन्द्रित-वृत्त के समान हैं। हम विचारों के स्तर पर जी सकते हैं, हम अपनी तथा दूसरों की देहों को विचार मात्र में पर्यवसित कर सकते हैं। हम इन वैचारिक रूपों को भी शान्त कर निर्गुण-निराकार के स्तर तक पहुँच सकते हैं तथा परम शान्ति और धन्यता का अनुभव कर सकते हैं।

किसी भी आध्यात्मिक अनुभूति की सत्यता तीन प्रकार से प्रमाणित की जानी चाहिए। (1) अपनी स्वयं की अनुभूति का पुन: पुन: प्राप्ति द्वारा सत्यापन। (2) अपनी स्वयं की अनुभूति की गुरुकथन के साथ तुलना करके सत्यता प्रमाणित करना। (3) अपनी अनुभूति की सत्शास्त्रों के कथन से तुलना करके सत्यता प्रमाणित करना। यदि हम ये सत्यापन न करें तो आत्मप्रवंचना की बहुत बड़ी सम्भावना है और हमारी अनुभूतियाँ हमारे अनियन्त्रित मन की खतरनाक कल्पनाएँ बन सकती हैं।

जब तक हमें देहात्मबोध है, तब तक हमें स्थूल जगत् के साथ तादात्म्य स्थापित रखना चाहिए; जब तक मानसिक स्तर पर हों, तब हमें विराट् मन के साथ तारतम्य बनाए रखना चाहिए; और जब हम आध्यात्मिक स्तर पर आरोहण करें, तो हमें परमात्मा के साथ एकरस होना चाहिए। उच्चतर स्तरों पर हम जिस प्रकाश, आनन्द और समरसता का अनुभव करते हैं, उन्हें निम्न स्तरों पर अभिव्यक्त करना चाहिए। तब हम जगत्-कल्याण के लिये दिव्य शक्ति, ज्ञान और आनन्द के मार्ग बन जाते हैं।

संसार असार है, ऐसा मानकर जो साधना के जीवन को अपनाता है, वह बहुत कच्ची नींव पर भवन खड़ा करता है। पक्की नींव तो तब उपलब्ध होती है, जब ज्ञात होता है कि आत्मा सार है। संसार का असार अनुभव होना साधना के लिये जिज्ञासा हो सकती है, लेकिन साधना का जीवन नहीं। उस जीवन की शुरुआत तो उसके अनुभव से होती है, जो सार है। असार के बोध पर खड़ी साधना नकारात्मक है।

– आचार्य रजनीश

राव तणुराव जी - जुगराज विजयराव जी 'चूड़ाला'

- रतनसिंह बडोड़ागाँव

जैसलमेर से 120 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित है-मातेश्वरी तनोट राय जी का भव्य व विश्व प्रसिद्ध मन्दिर। यहाँ तनोट में स्थित था- गढ़ तनोट जो दुर्गम रेगिस्तान में स्थित होने के कारण 'दुगम' भी कहलाता था। गढ़ तनोट इतिहास में अत्यन्त गौरवशाली स्थान रखता है जहाँ भाटियों ने राव तणुराव जी के नेतृत्व में 'शाका' कर आत्मोत्सर्ग किया था।

लूआं सू तपती इण माटी रे, कण कण में बलिदान भर्‌यो।
शीश हथेली मेल शूरमा, रण में ऊँचों नाम कर्‌यो।।

थार की वैष्णों देवी कहलाने वाली तनोटराय माता जी के मन्दिर के द्वार पर लगे शिलालेख पर 'इतिहास' इस प्रकार लिखा हुआ है-''माता श्री हिंगलाज के वचनानुसार माड प्रदेश (जैसलमेर राज्य) में चेलक निवासी मामड़िया जी की प्रथम सन्तान के रूप में वि.सं. 808 चैत्र सुदी नवमी मंगलवार को भगवती श्री आवड़ देवी (माता तनोट राय) का जन्म हुआ। इनके बाद जन्मी भवगती की छह बहिनों के नाम आशी, सेसी, गेहली, होल, रूप व लांग था। अपने अवतरण के पश्चात् भगवती आवड़ जी ने बहुत सारे चमत्कार दिखाए तथा नगणेची, काले डूंगर राय, भोजासरी, देगराय, तेमड़े राय व तनोट राय नाम से प्रसिद्ध हुई। तनोट के अन्तिम राजा भाटी तनुराव जी ने वि.सं. 847 में तनोट गढ़ की नींव रखी तथा वि.सं. 888 में तनोट दुर्ग एवं मन्दिर की प्रतिष्ठा करवायी थी।''

सन् 1965 में भारत-पाक युद्ध के समय पाकिस्तान ने मन्दिर तथा आसपास लगभग 3000 बम बरसाये। 450 गोले मन्दिर परिसर में गिरे किन्तु मन्दिर को खरोंच भी नहीं आयी। इसी प्रकार सन् 1971 के भारत-पाक युद्ध में माता तनोट राय की कृपा से शत्रु के सैंकड़ों टैंक व गाड़ियाँ भारतीय फौजों ने नेस्तनाबूद कर दिए और शत्रु दुम दबाकर भागने को विवश हो गया। अत: माता श्री तनोट राय भारतीय सैनिकों व सीमा सुरक्षा बल के जवानों की श्रद्धा का विशेष केन्द्र है।

वर्ष 1965 में सीमा सुरक्षा बल ने यहाँ सीमा चौकी स्थापित कर इस मन्दिर की पूजा-अर्चना व व्यवस्था का कार्यभार सम्भाला तथा वर्तमान में मन्दिर का प्रबन्ध-संचालन एक बी.एस.एफ., ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है।

युवराज तणुराव जी व युवरानी सारंगदे सोलंकिणी जी देवी आवड़ जी के दर्शन हेतु भादरिया आए तब आवड़ जी ने उन्हें तनोट में मन्दिर स्थापित करने का आदेश दिया व स्वयं प्रतिष्ठा करवाने का वचन दिया। तदनुसार मातेश्वरी हिंगलाज से लौटते वक्त तनोट पधारी व मन्दिर की प्रतिष्ठा निज कर कमलों से करवाई।

राव तणुराव जी सन् 805 ईस्वी में तनोट में शासक बने। राव तणुराव जी अपने पिताश्री राव केहर जी की तरह वीर और प्रतापी शासक हुए। वे देवी माता के परम भक्त थे। देवी बीझासणियों की कृपा से उनके यहाँ कुँवर विजयराव (बींझाराव) का जन्म हुआ।

खुरासान के हाकिम खलीफा हारू रसीद का बेटा मामु रसीद चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण करके लौटते वक्त राव तणुराव जी के राज्य में से होकर गुजरा, जहाँ भाटियों ने उसके काफिले को लूट लिया।

खलिफा खुरासान रा हाकम मामु रसीद।
चढ़ चित्तौड़ वापस हटा लूटा बीच में वींद।।

राव तणुराव जी ने माता जी के नाम से सन् 816 ईस्वी में माघ सुदी तेरस रविवार को रोहिणी नक्षत्र संवत् 873 में तणोट से 65 किलो मीटर दूर तक किला 'गढ़ बींझणोट' बनवाकर उसमें माता रानी का मन्दिर स्थापित किया।

राव तणुराव जी ने भटिण्डा के वराहों को युद्ध में परास्त किया था अत: अपनी पराजय का बदला लेने हेतु वराहों ने मुल्तान के लंघाओं के सहयोग से तणोट पर आक्रमण कर दिया। युवराज विजयराव ने देवी बींझासणियों को प्रसन्न करते हेतु इस प्रण के साथ कठोर साधना की कि, यदि वे विजयी रहे तो देवी को शीश दान कर पूजा

करेंगे। इस संघर्ष में विजयराव जी के नेतृत्व में भाटी सेना ने शत्रु का पूर्ण साहस के साथ सामना किया व विजयी रहे। युवराज विजयराव जी अर्द्धरात्रि में पूर्ण शुद्ध हो, शान्त भाव से अकेले मंदिर में पहुँचे। देवी माँ को षाष्टांग प्रणाम कर कृपाण उठाई और कंवल पूजा के लिये स्वयं की गर्दन पर वार करने ही वाले थे कि एक आवाज ने उन्हें ऐसा करने से रोक लिया। पुन: प्रयास करने पर देवी माँ ने उन्हें साक्षात दर्शन देकर आशीर्वाद के साथ अपने दाहिने हाथ की एक सोने की चूड़ पहनाकर सदा सहाय करने का वचन दिया। चूड़ धारण करने के कारण वे 'चूड़ाला' कहलाए।

वाराह राव जूने के पुत्र नाईछैन की सहायतार्थ गजनी के बादशाह ने मुल्तान में नियुक्त अपने सूबेदार हुसैनशाह को भाटियों के विरुद्ध सेना भेजने के निर्देश दिए। पुन: जंग छिड़ गई। युवराज विजयराव जी के कुशल नेतृत्व में भाटियों ने उन्हें मुंह तोड़ जवाब दिया। देवी माँ पालंब (सुगन चिड़िया) के रूप में युवराज के घोड़े की कनौति के बीच विराजमान हुई। युवराज ने निर्भय होकर युद्ध लड़ा व विजयश्री का वरण किया। तवारिख जैसलमेर के अनुसार चूड़ के प्रताप से एक हजार तलवारें गैब से (अदृश्य) चलती थी। शाही फौज हार व तलाक खाय वापिस लौट गई।

वृद्धावस्था में राव तणुराव जी ने श्री लक्ष्मीनाथ जी का मन्दिर बनवाकर उसमें सेवा करने का निश्चय करते हुए राजगद्दी का परित्याग करने का मानस बना लिया। उन्होंने पाटवी कुँवर विजयराव जी का सन् 820 ई. में तणोट में राजतिलक कर दिया। चूंकि रावजी स्वयं जीवित थे अत: विजयराव जी को 'जुगराज' की पदवी प्रदान की गई।

जुगराज विजयराव जी 'चूड़ाला' एक साहसी योद्धा थे। उन्होंने ईरान खुरासान के बादशाह, झाला व वाराहों को बाईस वार परास्त किया। उनका राज तणोट, मारोठ, मूमणवाहण, किरोहर, बींझणोट, भटनेर व जांगल प्रदेश तक विस्तृत क्षेत्र में फैला था। पंवारों, झालों, वाराहों आदि ने मिलकर विजयराव जी के विरुद्ध षड़यंत्र रचा। सन् 841 ई. में वाराहों ने शान्ति संधि के बहाने कुँवर देवराज के लिये विवाह प्रस्ताव भेजने का निश्चय कर राव अमरा जी की शिशु पुत्री हुरड़ का नारियल तणोट भेजा। जुगराज विजयराव जी ने इस मित्रता के प्रस्ताव का मान रखने के लिये नारियल स्वीकार कर लिया। वाराहों के आग्रह को स्वीकारते हुए वे पाँच वर्षीय युवराज देवराज की बारात लेकर भटिण्डा पहुँचे। बारात का अभूतपूर्व स्वागत किया गया। रात्रि में विवाह की रश्में सम्पन्न कर दी गई। जुगराज विजयराव जी की चमत्कारी चूड़ धोखे से चुरा ली गई। रात्रि के अन्तिम प्रहर में वाराहों ने भाटी सरदारों पर अचानक हमला बोल दिया। जुगराज विजयराव जी अपने करीब साढ़े सात सौ सरदारों सहित जूझते जुए काम आए।

युवराज देवराज जी को उनकी स्वामी भक्त धाय डाही ने सुरक्षित निकाल कर नेग नाम के आल राइके को सौंप दिया। नेग युवराज को अपनी 'जाड़िक' नाम की तेज चाल वाली ऊंटनी पर बिठाकर भाग निकला। वह वर्तमान के फलोदी क्षेत्र में पुरोहित देवायत जी के घर पहुँचा। पुरोहित जी द्वारा युवराज की सुरक्षा का वचन देने पर उन्हें सौंपकर राइका तणोट जा पहुँचा। घटना की जानकारी मिलने पर वृद्ध राव तणुराव जी सन्न रह गए। वृद्धावस्था व परिस्थिति की विवशता के बावजूद उन्होंने साहस और धैर्य नहीं छोड़ा। वे जान गए कि, शत्रु जल्दी ही तणोट पर हमला अवश्य करेगा। उन्होंने सुरक्षा कारणों से युवराज की माता को मेघाडम्बर छत्र, अन्य राजकीय चिह्न, गजनी का लकड़ी का तख्त और आदि नारायण जी की मूर्ति सौंपकर रक्षक दल के साथ उनके पीहर जांघे भेज दिया। रावजी ने अपने सैनिकों को एकत्रित कर उन्हें हमले की आशंका से अवगत किया तथा सभी सामरिक तैयारी में जुट गए।

वाराहों ने तुरन्त अपने मित्रों झालों, पंवारों व अरोड़-भाखड़ से हुसैनशाह की सैनिक सहायता से तणोट पर आक्रमण कर दिया। वृद्ध तणुराव जी के नेतृत्व में भाटियों ने शाका करने का निर्णय लिया। कुल ललनाओं ने जौहर किया। क्षत्रिय वीर जीवन का मोह त्याग कर शत्रु सेना पर टूट पड़े जैसे कोई दैविक शक्ति उनको प्रेरित कर

(शेष पृष्ठ 24 पर)

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक–पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण–5

एक स्वर्णिम प्रभात में मेरा मानस–मयूर मुग्ध हो अकस्मात् नाच उठा। उसने अपने रत्न–जटित उत्साह–पंख फैलाकर अज्ञात प्रसन्नता का आत्म–स्फुलिंग के रूप में प्रत्युत्तर दिया। प्रकृति का अणु–परमाणु भावी आनन्द का सन्देशवाहक बन पड़ा। मधुर और वेगवती ध्वनि वितरण करती मंगलवती आत्म–वीणा झंकृत हो उठी।

वादक था स्वयं परमेश्वर, संदेश में था साध्यज्ञान और राग थी सनातन सत्य–वाहिनी।

ईश्वर और प्रकृति हुए हैं साथी।
आत्म वीणा मधुर गीत गाती।।

अन्तरात्मा की प्रेरणा और मार्गदर्शन के बाद एक स्वर्ण प्रभात में दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। साधक का मन हर्ष विभोर हो जाता है। उसका मन–मयूर रत्नजड़ित पंखों से कल्पना के आकाश में उड़ने लगता है। वह अवर्णनीय उत्साह, प्रसन्नता एवं आत्म–स्फूर्ति का अनुभव करने लगता है। जब हमारा मन प्रसन्न होता है, तो हमें धरती के कण–कण में प्रसन्नता और खुशहाली की अनुभूति होती है। जिस मार्ग की खोज के लिये साधक भटकता रहा, भटक–भटक कर थक गया था। अपनी हार स्वीकार कर चुका था। निराश होकर आत्महत्या अथवा कर्म त्याग के निर्णय पर आ गया था, उस मार्ग का दर्शन ठीक समय पर अपनी आत्मचेतना ने, परमात्मा ने कर दिया; इससे उसका रोम–रोम प्रसन्न हो गया। वह अपने को धन्य–धन्य मानने लगा। जीवन सार्थक मालूम होने लगा। कल्याणकारी आत्म वीणा के तारे झंकृत हो उठे।

वीणा की उस मधुर ध्वनि में उसने अपने लिये संदेश सुना। वीणा का स्वर था साध्य ज्ञान और राग था सनातन सत्य। साध्य ज्ञान का मतलब क्या? साध्य ज्ञान का मतलब है अपने साध्य तक पहुँचने के पथ का ज्ञान। सत्य हमेशा अमर राग में ही प्रसारित होता है।

हमारी अपनी आत्मा की आवाज, ईश्वरीय संकेत, प्रकृति का संदेश समझने की योग्यता न हो, सामर्थ्य न हो, भले ही हमें ये सब समझ में न आये, फिर भी यदि हम साधना के उस पथ पर प्रस्थान करें तो चलते–चलते सब समझ में आ जाएगा। हमें सही मार्ग पर चलता देखकर परमात्मा स्वयं हमें सब समझने का बल देंगे। बस हम साधक बनकर साधना पथ पर शीघ्र प्रस्थान करें।

सार–प्रसन्नता परमात्मा का वरदान है।

अवतरण–6

मैंने उस अमर राग में प्रसारित संदेश को बौद्धिक कसौटी पर कसा। व्यभिचारिणी बुद्धि ने अंग–प्रत्यंग प्रदर्शनों से मुझे भ्रमित किया। उसकी विविध भाव–भंगि और धूर्त चेष्टाएँ मेरी आत्मा की संकल्पात्मक स्थिरता को चलायमान करने में फलीभूत हुई। मैं उस मोहिनी बुद्धि के पीछे खूब दौड़ा, उसके आदेशों का यथाविधि पालन किया पर प्राप्ति हुई केवल अपूर्णता की।

बुद्धि बिचारी भ्रमे स्वार्थ माँ।
साधक दिल रमे परमार्थमां।।

प्रथम पाँच अवतरणों में हमने साधक की भाव–जगत की यात्रा के अनुभवों की थोड़ी–सी समझ प्राप्त की। इस अवतरण में भाव–जगत का यात्री बुद्धि के प्रदेश में प्रवेश करता है। हृदय के भावों को बुद्धि की कसौटी पर परखने का मानव का सहज स्वभाव है। साधक भी अमर राग में प्रसारित संदेश को बुद्धि की कसौटी पर परखता है। वास्तव में एक ही बुद्धि के तीन स्तर हैं। उत्तम बुद्धि अर्थात् विवेकवती बुद्धि, मध्यम बुद्धि अर्थात् संशयात्मक बुद्धि और कनिष्ठ बुद्धि अर्थात् व्यभिचारिणी बुद्धि। सामान्य मनुष्य पर व्यभिचारिणी बुद्धि का प्रभाव होता है। बुद्धि का कौनसा स्तर कैसे निर्मित होता है, यह बहुत गहरी चर्चा का विषय है। हम तो केवल साधक पर जिस बुद्धि का प्रभाव है, उसकी संक्षेप में बात करेंगे। व्यभिचारिणी बुद्धि वह है जो

साधक को लुभावनी चीजों पर आसक्त करती है। अनेक प्रकार के प्रलोभनों के प्रति आकर्षित करती है। साधक को अपने लक्ष्य से भटका देती है। साधना के मार्ग से विचलित कर देती है। वह साधक से कहती है-''भले आदमी! भावुक मत बनो, संवेदना में मत बहो, समाज-राष्ट्र-धर्म के नाम पर अपना जीवन मत बर्बाद करो। क्या मिलेगा? जिन-जिन लोगों ने इस भावना में बहकर अपनी जवानी के महत्त्वपूर्ण वर्षों का व्यय किया, उन्होंने क्या पाया? परेशानी, पीड़ा, दारिद्र्य-दुख, दर-दर भटकने के सिवाय उन्हें क्या मिला? छोड़ो सब भावुकतापूर्ण बातें, कुछ काम की बात करो। अपने, अपनी संतान तथा अपने परिवार के लिये कुछ करो। संसार में जो सुख-सुविधा के साधन हैं, उन्हें जुटाओ। दो पैसे जमा कर लो ताकि आगे के जीवन में काम आवे।'' इस प्रकार के अनेक प्रलोभन दिखाकर साधक को पथ विचलित कर देती है। हम अपने चारों तरफ ऐसे ही वातवरण का अनुभव करते हैं। और यही कारण है कि आज हमारे समाज की, राष्ट्र की और धर्म की दयनीय स्थिति हो गई है।

सच्चा साधक वह है जो इस प्रकार के प्रलोभनों में नहीं फँसता। वह उस व्यभिचारिणी बुद्धि के चंगुल में नहीं फँसता।

सार-बुद्धि के चक्कर से बचकर ही भाव को दृढ किया जा सकता है।

अवतरण-7

फिर भी मैं सत्य प्रतीत होने वाले मिथ्यावादों की ओर उन्मुख होता गया। मैंने उद्घोष किया-

''ये धर्मशास्त्र मिथ्या हैं;- यह समाज-विधान रूढिग्रस्त है;-यह परम्परा विज्ञान-सम्मत और पूर्ण नहीं है।''

प्रतिक्षण नवीनता की खोज में मैं पूर्णता से अपूर्णता की ओर खिंचता ही गया। कारण समझने की चेष्टा की तो ज्ञात हुआ मैं उस श्रद्धा और विश्वास को बहुत पहले ही खो चुका था जिनका सहारा लेकर ज्ञान स्थायित्व के दृढ आसन पर आरूढ होता था।

गत अवतरण में हमने देखा कि साधक भाव जगत से बुद्धि प्रदेश में प्रवेश करता है। वह दुविधा में पड़ जाता है। एक तरफ उसे बुद्धि के प्रदेश में संतोष नहीं मिलता है, कुछ कमी मालूम होती है। अपूर्णता का अनुभव होता है, फिर भी वह व्यभिचारिणी बुद्धि के चंगुल में फंसता जाता है तथा उसी मार्ग पर आगे बढता जाता है। सत्य की ओट में, आवरण में असत्य का पोषण करके मिथ्यावाद को पाल रहा है। असत्य बहुरूपिया की तरह सत्य का मुखौटा धारण करके भ्रमित कर रहा है। मिथ्यावाद अर्थात् 'चार्वाक वाद'-खाओ, पीओ और मौज करो-विषयान्तरित कर रहा है।

मूल बात यह है कि इस अवतरण को हमारी अपनी सामाजिक परम्परा के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करना है। जिस समाज में, जिस जाति में हमारा जन्म हुआ है, हम उसके ऋणी हैं। ऋण को स्वीकार करके ऋण-मुक्त होने के लिये उस समाज, जाति के पुनरुत्थान के लिये हमें तन-मन-धन से यथाशक्ति कर्मरत होना है। यही कृतज्ञता है। परन्तु यहाँ साधक व्यभिचारिणी बुद्धि, जिसे स्वार्थ बुद्धि भी कहा जा सकता है, उसके प्रभाव में आगया है अत: वह सोचता है कि हमारे धर्मशास्त्र मिथ्या हैं। हमारी जातिगत परम्परा रूढिगत है। हमारी परम्परा को विज्ञान का समर्थन नहीं है। इस प्रकार की भ्रमित विचारधारा में वह बह रहा है। वह पूर्णता से निकलकर अपूर्णता की तरफ बढ रहा है। पूर्णता में अपूर्णता और अपूर्णता में पूर्णता होने का उसे भ्रम हो गया है।

लेकिन उसकी अन्तरात्मा इससे संतुष्ट नहीं है। बार-बार भीतर से वह चेतावनी दे रही है कि हे साधक! तुम गलत राह पर चल रहे हो। अपने पथ से विचलित हो रहे हो। जिसे तुम असत्य और मिथ्या मानते हो, वही सनातन सत्य है। यही तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है। फिर वह खुद सोचता है कि ऐसा क्यों हो रहा है? कारण मिल जाता है। कारण है, अपने धर्म शास्त्रों में, अपनी परम्पराओं में अविश्वास। मिथ्यावादियों ने अपनी तार्किक बुद्धि से हमें प्रभावित करके, हमारे धर्म, हमारी परम्परा में अविश्वास और अश्रद्धा पैदा करके हमें भ्रमित कर दिया है। श्रद्धा और

विश्वास के अभाव के कारण हम भ्रमित हो गये हैं। हमें अपने धर्म, परम्पराओं में विश्वास और श्रद्धा होगी तब हम सत्य को प्राप्त कर सकेंगे। हमारी सामाजिक भावना और अपने जातीय गौरव को पुन: स्थापित करने के लिये अपनी परम्पराओं में श्रद्धा और विश्वास करना परम आवश्यक है। परमात्मा से हम प्रार्थना करते हैं, हमारी आन्तरिक विवेकवती बुद्धि को जागृत करें, ताकि अपनी परम्परा और धर्म में हम दृढ़ विश्वास स्थापित करें।

सार–शरीर–शुद्धि के लिये स्नान आवश्यक है।
मन–शुद्धि के लिये ज्ञान आवश्यक है।।

अवतरण–8

पर भागवत–संदेश का अमर अंकुर मेरे हृदय–स्थल पर प्रस्फुटित हो चला था। इस बार मैंने उसे श्रद्धा और विश्वास के जल से सींचना प्रारम्भ किया। देखा, सफलता की अद्‌भुत सम्भावना है इस प्रयोग में। शीतलता, स्निग्धता, अनुकूल आहार–पेय और रक्षण के वातावरण में परिपोषित यह पौधा आशातीत वृद्धि को प्राप्त होने लगा। अपूर्ण तर्क ने पुन: आपत्ति की, पर ''तुम्हें भी अपना उचित स्थान मिलेगा'' कहकर उसे चलता किया।

श्रद्धा, विश्वास और ज्ञान।
ईश्वरीय सहाय, प्रगति सोपान।।

इस अवतरण का प्रथम वाक्य विचारणीय है। ईश्वरीय संदेश तो सबको मिलता है। बीज रूप में सब के हृदय में पड़ा हुआ है, परन्तु वह अंकुरित होता है, विकसित होता है साधक के हृदय में। जब जागृत साधक इस संदेश को उचित वातावरण प्रदान करता है, उस संदेश को, विचार को अपने जीवन में कार्यान्वित करता है, तब वह फलदायी बनता है।

इस पूरे अवतरण को सामाजिक संदर्भ में समझने का प्रयत्न करते हैं। प्रथम अवतरण में साधक ने अपनी इच्छा प्रकट की है 'मैं भी कुछ करूं'। इस विधान में साधक ने अपनी भावना की अभिव्यक्ति की है। समाज के लिए कुछ कर गुजरने की इच्छा व्यक्त की है। जब इस इच्छा को, भाव को, तमन्ना को श्रद्धा और विश्वास का बल मिलता है तो वह दृढीभूत होती है। इस दृढता को कार्यान्वित करने के लिये इस भाव को, विचार को क्रिया में परिवर्तित करने के लिये ही प्रवृति का प्रारम्भ होता है। कोई भी प्रवृति चाहे व्यक्तिगत हो, चाहे सामाजिक हो अकेले नहीं हो सकती। समान विचार और समान लक्ष्य वालों का सहयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य होता है। सामाजिक जनसमूह की जागरूकता से प्रवृति का विकास होता है और सामाजिक उन्नति होती है। उचित जागृति के अभाव में पर्याप्त सहयोग नहीं मिलने से प्रवृति की गति मंद हो जाती है।

हमारी सामाजिक उन्नति की भावना, विचार चाहे कितने ही ऊँचे हों, उचित एवं पर्याप्त मात्रा में सहयोग का अभाव कार्यकर्ताओं को हताशा में ढकेल देता है। फलत: लक्ष्य प्राप्ति दूर मालूम होने लगती है।

परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि जिस उन्नत भाव का संदेश आपने हमारे हृदय में आरोपित किया है, उस समाज की जागृति एवं सहयोग की प्राप्ति हेतु सभी को सन्मति प्रदान करें।

सार–दृष्टि भ्रम हो सकता है, किन्तु लक्ष्य भ्रष्ट न हों।

*

मानव जीवन भी तो उस नदी के समान है जो एक विशाल मार्ग पर बह रही है। ऐसी मंजिल की खोज में जिसका उसे कुछ ज्ञान नहीं। उसका बहाव ही मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर विजय पाता है और स्वयं अपना मार्ग बनाता है। कुछ कठिनाइयाँ बड़ी–बड़ी चट्टानों के समान उसके मार्ग में खड़ी होती हैं और वह उससे टकरा कर, लांघकर चली जाती है। टकराने से शोर उठता है। नदी का बहाव मंद होता है, तीव्र होता है–पर रुक नहीं सकता।

– गुलशन नंदा

विचार-सरिता

(अष्टचत्वारिंशत् लहरी)

– *विचारक*

जब तक देहाध्यास है तब तक दु:ख का कोई अन्त नहीं है, क्योंकि देह में अहंबुद्धि के कारण देह के विकारों को हम अपने में विकार मानकर दु:खी हो रहे हैं। अविकारी आत्मा में विकार की भावना का कारण देहाध्यास ही है। यदि हमने शरीर के साथ अहंबुद्धि की तो हममें भय व्याप्त हो जाएगा, क्योंकि शरीर की मृत्यु निश्चित है। उसका परिवर्तन अवश्यंभावी है जिसे ब्रह्माजी भी रोक नहीं सकते। परन्तु यदि हमने अपने आत्म-स्वरूप को जान लिया, स्वरूप में निष्ठा हो गई, तो हम निर्भय हो गए क्योंकि स्वरूप की मृत्यु कभी होती नहीं। मौत भी उससे डरती है।

जागतिक सुख-दु:ख के दृश्य तो आने जाने वाले हैं। चलचित्र के पर्दे पर हर्ष और विषाद के बहुत से दृश्य उभरते हैं और मिट जाते हैं पर पर्दा अपनी महिमा में स्थित है। उन समस्त दृश्यों का आधारभूत होते हुए भी पर्दे को न हर्ष है, न शोक है ऐसे ही शरीर की अनुकूलता या प्रतिकूलता, सुख या दु:ख जिसे आना हो आए और जाना हो जाए। किसी भी दृश्य को सच्चा मत मानो हमें तो द्रष्टा बनकर देखते रहना है, अपनी महिमा में मस्त रहना है। बाहर कैसी भी घटना घटी हो, चाहे वह कितनी भी प्रतिकूल लगती हो, उससे तनिक भी खिन्न होने की आवश्यकता नहीं। हम यदि अपने आप में टिके रहें तो मिला हुआ शाप भी हमारे लिये वरदान सिद्ध हो सकता है। अर्जुन को उर्वशी ने वर्ष भर नपुंसक रहने का शाप दिया था, परन्तु वह भी अज्ञातवास के समय अर्जुन के लिये वरदान बन गया।

प्रतिकूलता से भयभीत नहीं होना है। सदा शान्त और निर्भय रहो। भयानक दृश्य (द्वैत) केवल स्वप्नमात्र है, डरो मत। चिन्ता, भय, शोक, व्यग्रता और व्यथा को दूर फेंक दो। उधर कतई ध्यान मत दो। सारी शक्ति निर्भयता से प्राप्त होती है, जो कि हमारे स्वरूप का स्वभाव है, इसलिये बिल्कुल निडर व निर्भय रहने का अभ्यास करो।

देहाध्यास को छोड़ना साधना का परम शिखर है, जिस पर पहुँचे बिना मुक्ति की कल्पना करना ही बेमानी है। मौत के पूर्व देह की ममता को भी पार करना पड़ेगा, वर्ना कर्मबंधन और विकार हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा। जब तक हम हड्डी-माँस-त्वचा से युक्त इस देह को ही 'मैं' मानते रहेंगे तब तक दुर्भाग्य से पीछा नहीं छूटेगा और भीतर में ब्रह्मसाक्षात्कार का निर्भय-नाद नहीं गूंज पाएगा। देहाध्यास के कारण अजन्मा आत्मा में जन्म और मृत्यु को मानना ही सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। इससे पहले कि यह सब छोड़कर जाना पड़े, मोह-ममता रूपी पाश को विवेक रूपी कैंची से काटते रहना। बाहर के मित्रों से, सगे-सम्बन्धियों से मिलना, पर भीतर में समझना कि न कोई मेरा मित्र है, न कोई सगा-सम्बन्धी है, क्योंकि ये सब छोड़कर जाने वाले हैं। मेरा मित्र तो वह है जो अन्त में इस शरीर की मौत के बाद भी मेरा साथ न छोड़े।

मन में भय, अशान्ति, उद्वेग और विषाद को स्थान मत दो। सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहने का अभ्यास करो। अपनी महिमा में जागो। दीनता व गुलामी हमारा स्वभाव नहीं है। दीनता-हीनता पाप है। इस पास से बचो। मौत को भी ललकारो और निर्भयतापूर्वक कहो-ऐ मौत! तू मेरे शरीर को छीन सकती है, जो कि प्रकृति का है, मेरा इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं, पर मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। अब लाख-लाख कांटों पर भी मैं निर्भयता पूर्वक कदम रखूंगा। हजार-हजार उत्थान और पतन में भी मैं ज्ञान की आँख से देखूंगा। मुझ आत्मा को कैसा भय? मेरा कभी कुछ न बिगड़ा है न बिगड़ेगा।

साधक की दृष्टि में संकल्प होना चाहिए कि यह दुर्लभ शरीर न स्त्री-बच्चों के लिये है, न दुकान-मकान और खेत-खलिहान के लिये है और न ही ऐसी तुच्छ व

विनाशी चीजों के संग्रह के लिये है। यह दुर्लभ देह तो केवल और केवल आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये है। इसलिये अपने परमलक्ष्य आत्म-साक्षात्कार से हमें वंचित नहीं रहना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिये। बाहर के रिश्ते-नातों को, बाहर के सांसारिक व्यवहार को उतना ही महत्त्व दो जहाँ तक साधना के मार्ग में विघ्न न बने। साधना मेरा मुख्य कर्तव्य है, शेष सभी कार्य गौण हैं-इस दृढ़ भावना के साथ साधना के पथ पर बढ़ते रहना है। जब तक मंजिल की अनुभूति न हो तब तक चरैवेत्ति! चरैवेत्ति!!

किसी भी अनुकूलता की आस मत रखो। संसारी तुच्छ विषयों की माँग मत करो। विषयों की माँग ही हमें दीन और हीन बनाती है। विषयों की दीनतावालों को कभी भी आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। ***'नाऽयम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः।'*** इसलिये भगवान की पूजा करनी हो तो भगवान बनकर करो। जैसे भगवान निर्वासनिक हैं, निर्भय हैं, आनन्दस्वरूप हैं, ऐसे हम भी निर्वासनिक और निर्भय होकर आनंद में रहना सीखें। यही उस विराट पुरुष की महान पूजा है। अपनी महिमा से अपरिचित होने के कारण हम किसी से भी प्रभावित हो जाते हैं। कभी मसखरों से, कभी कवियों से, कभी विद्वानों की वाणी से, कभी जादूगर की जादूगिरी से, कभी नट-नटनियों से, कभी स्त्री से, कभी पुरुषों से, तो कभी सिनेमाघरों में चल रहे चलचित्रों से प्रभावित हो जाते हैं। यह इसलिए कि हमें हमारे स्वरूप की गरिमा का पता नहीं है। हकीकत तो यह है कि हमारे स्वरूप में अनंत, विद्वान, पहलवान, जादूगर और भविष्य वक्ता आदि छिपे हुए हैं। हमारे स्वरूप से बाहर कुछ नहीं है। हम बाहर के किसी भी व्यक्ति से या परिस्थिति से प्रभावित हो रहे हैं तो समझ लेना चाहिये कि हमारी गुलामी गई नहीं है। हम द्रष्टा होते हुए भी दर्शक बन रहे हैं। जगत के सारे दृश्यों के आधारभूत आत्मदेव होते हुए यदि अपने स्वयं के खेल से खिलाड़ी उलझ जाए तो समझना चाहिये कि अभी पूर्ण जागृति नहीं आई है। होशवाला ही बेहोश है तो कोई क्या करे। दुल्हा स्वयं यदि बारातियों के आगे नृत्य करने लग जाए तो कमजोरी किसकी? तमाशबीन ही यदि तमाशाई बन रहा है तो समझो, अज्ञान जारी है।

दृश्य जगत के दर्शक नहीं द्रष्टा बनकर जीना सीखो। मन को उदास मत करो, सदैव प्रसन्नमुख रहो। हँसमुख रहो। हमारा स्वरूप आनंदस्वरूप है। भय, शोक, चिन्ता आदि हमारा स्वभाव ही नहीं है। ऐसी दृढ़निष्ठा से सदैव अपने आत्मभाव में स्थिर रहो। समस्त संसार के रचियता तो हम स्वयं हैं फिर भी अपनी ही कृति से भयभीत होने की कहाँ जरूरत है। बाजीगर अपनी बाजीगरी से रचित सर्प से कभी भयभीत नहीं होता। वह भलीभाँति जानता है कि यह तो मेरी बाजीगरी का कमाल है। इसमें सर्प जैवी वस्तु है ही कहाँ? जो समस्त सृष्टि का रचियता, पोषक व संहारक है वही यदि अपनी मायावी दुनिया के सुख-दुःखों में उलझ रहा हो तो समझना चाहिए कि हमने अपने ईशत्व को जाना ही नहीं। संसार के शहंशाह होते हुए भी कंगालों का जीवन जी रहे हैं।

अपने आपको परमेश्वर अनुभव करो। क्षुद्रतर भावना से ग्रस्ति होकर अपनी महानता को भूलो मत। सब मत-मतान्तर, पंथ-सम्प्रदाय उपनिषद के ज्ञान के आगे क्षुद्रतर हैं। हमारे स्वरूप से भिन्न न राम है, न रहीम है। जब भी हम बाहर की परिस्थिति को अपने से बड़ा कल्पित कर लेते हैं तब वह हमारे लिये भयावह लगती हैं। बाहर की परिस्थिति में इतना बल ही कहाँ जो सर्वनियंता, सबका शासक, सबका सृष्टा परमदेव को क्षणमात्र के लिये डगमगा सके। किसी भी परिस्थिति से घबराने का मतलब है कि हम हमारी ही छाया से भयभीत हैं। अपने को दीन-हीन समझना और परिस्थितियों के सामने झुक जाना आत्महनन के समान है। अपने भीतर की वास्तविक शक्ति की विस्मृति का ही परिणाम है कि रचनाकार अपनी ही रचना से भयभीत है। उसी सन्दर्भ में विचार सागर तो यह कहता है कि-

दीनता को त्याग नर आपनो स्वरूप देख,
तू तो शुद्ध ब्रह्म अज, दृश्य को प्रकाशी है।
आपने अज्ञान ते जगत सब तू ही रचे,
सर्व को संहार कर आप अविनाशी है।।
मिथ्या प्रपञ्च देख दु:ख जानि आनि हिये,
देवन को देव तू तो सब सुख राशि है।
जीव, जग, ईश होय माया से प्रभास तू ही,
जैसे रज्जु, सांप सीपी रूपा ह्वै प्रभाशी है।।

तीन काल में कभी रज्जु में सर्प आया ही नहीं और सीपी में रजत है भी नहीं परन्तु रज्जु के अज्ञान से व सीपी के ज्ञान के अभाव में सर्प व रजत की भ्रांति हो रही है ऐसे ही अपने स्वरूप के ज्ञान के अभाव में ही जगत की सिद्धि हो रही है। यदि अपने स्वरूप का बोध हो जाए तो जगत की पोल निश्चित है। जगत की सत्यता, अपनी सत्यता के अभाव में है। अन्यथा जगत नाम की कोई वस्तु तीन ही काल में नहीं है। ऐसे सकारात्मक भाव से अपने आपको भर दो। जागो अपनी महिमा में जागो और अपने आपको आनंद दे भर दो। साकार मिथ्या है। निराकार सत्य है। हमारी मिथ्या मान्यताएँ ही हमें भटका रही हैं और हम उन मिथ्या मान्यताओं के कारण अपने आपसे दूर होते जा रहे हैं। हमारी शंकाएँ और भय ही हमारे जीवन को नष्ट कर रहे हैं। जितना भय और शंकाओं को हृदय में स्थान देंगे, उतने ही उन्नति से दूर होते जाएँगे। श्रीकृष्ण की गीता का एक सूत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि-समत्व योग उच्यते। सदा सम रहने की कला जिसको आ गई वह संसार में सबसे सुखी और आनंदित है। अनुकूलता और प्रतिकूलता तो मन की मान्यता में है। परिस्थिति में न अनुकूलता है न प्रतिकूलता है। अत: दोनों ही परिस्थितियों को आने-जाने वाली मानकर जो सम रहता है वह ज्ञानी पुरुष कभी भी आत्मतत्व से विचलित नहीं हो सकता। इसलिए साधक के लिये सदा सम रहने की तपस्या के आगे सब तपस्याएँ छोटी हैं। सदा प्रसन्न रहने की कुंजी के आगे बाकी की सब कुंजियाँ छोटी हो जाती हैं। आत्मज्ञान के आगे और सब ज्ञान बौने हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में हर इज्जत वाले से ब्रह्मवेत्ता की ऊँची इज्जत है। ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की इज्जत में चाहे वह राजा हो, प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति ही क्यों न हो सबको झुकते देखा गया है।

आत्मतत्व में जगे हुए ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि में ''एको ब्रह्म द्वितीय नास्ति'' की भावना इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि न उत्पत्ति है, न प्रलय है, न बद्ध है, न मोक्ष है, न साधक है न साध्य है, न मुमुक्षु है न मुक्त ही है। उसकी दृष्टि में यही परमार्थ है। ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि में अपने से अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की कोई सत्ता है ही नहीं। ऐसा जो जानता है वही ब्रह्मस्वरूप है। आज तक हमने बहुत से देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की, मन्दिर-मजिस्द में नाक रगड़ा, लेकिन किसी बुद्ध पुरुष से अन्तर्मुख होने की कला सीखकर अभ्यास किया होता तो देवी-देवता चलकर हमारे दर्शन को आते। अब भी समय है। किसी मस्त फकीर की कृपा का प्रसाद पाकर अपने को धनधन्य करो।

*

पृष्ठ 18 का शेष

राव तणुराव जी - जुगराज विजयराव जी 'चूड़ाला'

रही हो। उन्होंने अनेक शत्रुओं को धाराशायी किया, स्वयं भी कट-कट कर वीरगति को प्राप्त हुए। राव तणुराव जी भी जूंझते हुए मातृभूमि की गोद में चिर निंद्रा में सो गए। अब तणोट के किले में मौत का सन्नाटा था।

धरती रो कण नह दिवे, धर देणो तो दूर।
उड़ती रज नै थांबवा, सोणित भिगोवे सूर।।

इस प्रकार अपनी मातृभूमि की रक्षार्थ उसे अपने सोणित से भिगोनें के बावजूद वे कामयाब नहीं रहे। जुगराज विजयराव जी 'चूड़ाला' और राव तणुराव जी द्वारा वीरगति को प्राप्त हो जाने के कारण भाटियों ने अपने सभी छह किले तणोट, मारोठ, मूमणवाहण, बींझनोट, केहरोड़ और भटनेर एक साथ गँवा दिए।

क्या मैं स्वतंत्र हूँ

– संकलित

मुझे इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। मेरे क्या, जिसके मंदिर में प्राण का प्रदीप जल रहा है, वह कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र नहीं है। प्राणवायु प्रवाहित हो रहा है, मैं जी रहा हूँ। अनाज उपज रहा है, मैं खा रहा हूँ। जल बरस रहा है मैं पी रहा हूँ। मेरी जीवन यात्रा अन्न, जल और प्राण वायु के अधीन है। जीवन का अर्थ है, पराधीनताओं की स्वीकृति।

मैं देख रहा हूँ, बीज अंकुरित हो रहा है। उर्वर भूमि, जल, धूप, प्रकाश और हवा-बीज इन सबकी अधीनता स्वीकार कर रहा है।

मैं देख रहा हूँ, सामने दीपक है, दीप जल रहा है। एक पात्र, तेल, बाती, हवा और अग्नि, दीप इन सबकी अधीनता स्वीकार कर प्रकाश दे रहा है।

क्या बीज अंकुरित होने में स्वतंत्र है? क्या दीपक प्रकाश देने में स्वतंत्र है? काल, स्वभाव, नियति, भाग्य और पुरुषार्थ की शृंखला से कोई भी मुक्त नहीं है।

एक पिंजरा टंगा हुआ है, उसमें सुआ बैठा हुआ है। पिंजरे का द्वार खुला, सुआ उड़ गया। मैंने अपने आप से पूछा वह भोला पक्षी घर छोड़कर जंगल में क्यों चला गया? पिंजरे में छितरे हुये मेवों को छोड़कर सूखे पेड़ों की शरण में क्यों चला गया?

कोई अज्ञात स्वर उठा-पिंजरा बंधन है। अनन्त शून्य से घिरा हुआ है, अत: घेरे की शून्यता मान्य नहीं हुयी। कारों में बैठने वाले घेरे की शक्ति से परिचित नहीं होते तो कारों में नहीं बैठते। वे जानते हैं कि पैरों से चलने में दूरी कम ही पाई जा सकती है।

यदि मैं घेरे की शक्ति से परिचित नहीं होता तो परम्परा से नहीं जुड़ता। परम्परा, सम्प्रदाय, जाति और राष्ट्र-यह सब घेरे हैं और सीमा बद्ध हैं। इनमें शक्ति नहीं होती तो यह कभी समाप्त हो जाते। पर यह जी रहे हैं और इसलिये जी रहे हैं कि विद्युत का प्रवाह बल्ब से घिर कर ही प्रकाश देता है। बवंडर (घिरा हुआ पवन) जो कार्य कर सकता है वह पवन खुले आकाश में नहीं कर सकता। गोली में शक्ति तभी आती है, जब वह बन्दूक से दागी जाती है। बाण में शक्ति तभी आती है, जब वह धनुष से फेंका जाता है।

मनुष्य ने बंधन का स्वीकार मूर्खतावश नहीं किया। वह भाषा के बंधन से बंधा हुआ है इसलिये सोचता है और दूसरों तक पहुँचता है। वह इन्द्रिय और मन से बंधा हुआ है, इसलिये गतिशील है। वह भूख से बंधा हुआ है इसलिये गतिशील है। यदि स्व, स्व ही रहता तो मैं पूर्ण स्वतंत्र होता। जिसके पैर स्वस्थ हों, उसे वैसाखी की आवश्यकता नहीं होती। मेरी अपूर्णता ने मुझे सापेक्षता की ओर झुकाया है।

कुम्हार का चाक कुछ क्षण पहले उस अंगुली के अधीन चल रहा था। अब वह उसके वेग के अधीन चल रहा है जो अंगुली द्वारा प्रदत्त है। वह कभी अंगुली के अधीन चल रहा है, कभी वेग के अधीन चल रहा है। दुनियां की सारी गतिशीलता अधीनता द्वारा नियंत्रित है। एक बार एक राजा और मंत्री में विवाद हो गया। मंत्री ने कहा-सारे लोग पत्नी की अधीनता स्वीकार कर चलते हैं। राजा ने इस बात से असहमति जताई। आखिर परीक्षा की घड़ी आई। एक तरफ पत्नी से डरने वालों का खेमा था वह भर गया। दूसरे खेमे में सिर्फ एक आदमी खड़ा था। राजा ने उससे पूछा, तो बताया कि मेरी पत्नी ने कहा है-भीड़ में मत जाना, इसलिये अकेला खड़ा हूँ। सारे नगर में एक भी आदमी नहीं मिला जो पत्नी से चालित न हो। दुनियाँ में एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो अपेक्षाओं द्वारा संचालित न हो।

एक बार मैं जंगली माषों (धमाषे) के पौधों से घिरा बैठा था। दोपहर का समय था। सूरज तेज आग बरसा रहा था। उन पर लगी फलियों में तड़तड़ की ध्वनि हो रही थी। मैंने सस्मय दृष्टि से देखा-फलियाँ टूट रही हैं, दाने आकाश में उछल रहे हैं। उछलने में स्वतंत्रता के आनन्द की अनुभूति थी। अनुभूति ने मुझे यह संबोध दिया कि दाने को फली की अधीनता मान्य हो सकती है, यदि वह पकने के बाद दाने को मुक्त करने के लिये प्रस्तुत हो। फल को वृन्त (छिलके) की अधीनता मान्य हो सकती है, यदि वह पकने के बाद फल को मुक्त करने के लिये प्रस्तुत हो। इस संचर्चा के बाद मेरे मन में वह प्रश्न नहीं उभर रहा कि क्या मैं स्वतंत्र हूँ? किन्तु यह विश्वास उभर रहा है कि मैं स्वतंत्र होने के लिये परतंत्र हूँ।

*

पुरुषार्थी बनें

– संकलित

प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण नियम है कि आगे बढते रहो, वरना प्रकृति आपको पीछे धकेल देगी।आप एक जगह स्थायी या स्थिर नहीं रह सकते, अत: आगे बढते रहना ही जीवन है। चलते रहो-चलते रहो, क्योंकि चलने का नाम ही जीवन है। अनंत आकाश को पार करता हुआ, अपरिचित लोकों का भ्रमण करता हुआ सूर्य प्रात:काल आकर हममें से प्रत्येक के जीवन-द्वार पर यही अलख जगाता है,-'चलते रहो-चलते रहो'। सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्रों के अलावा पृथ्वी और पृथ्वी की हर चीज भी चलती है। झरना कल-कल करता हुआ बहता रहता है, नदी निनाद करती हुई अपने प्रियतम उछलते समुद्र की बाहों में समाकर धन्य हो जाती है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग सब चलायमान हैं। यहाँ तक कि वनस्पति भी गति करती है। लता-वेलि पादप से लिपटती-लिपटती उसके शिखर तक पहुँच जाती है। पवन का तो स्वभाव ही बहना है। प्रकृति की इस व्यवस्था के कारण ही हमें दिन और रात, वायु, अग्नि, जल, प्रकाश, उष्णता व शीतलता मिलती रहती है।

गच्छति इति जगत-जो चलता है वह जगत है। जगत में जगत के साथ बने रहने के लिये चलते रहना अनिवार्य है। पृथ्वी के ऊपर उपग्रह को अमुक स्थान पर स्थायी करने के लिये उसी गति से चलाया जाता है, जिस गति से पृथ्वी घूम रही है। तभी वह हमें स्थायी प्रतीत होता है। प्रगति का रहस्य चलायमान बने रहने में ही है।

सारी दृष्टि काल के आधीन है। काल का लक्षण है-गतिशीलता, परिवर्तनशील। काल चलता है, चलता रहता है। अत: वही काल को समझ सकता है, वही काल से संभल भी सकता है, जो स्वयं चलता है, गतिशील रहता है। काल-प्रभाव से कुछ नष्ट होता है, तो कुछ निर्मित भी होता है। निर्माण के लिये संवर्द्धन के लिये हमें काल-प्रवाह का चिन्तन करना आवश्यक होता है। पैरों की गति मन को मति प्रदान करती है।

हम अपने स्वर्णिम इतिहास के पृष्ठों में झाँककर देखेंगे तो पायेंगे कि सभी महामानवों ने चलते रहने, यानि निरंतर गतिशील रहने के कारण ही अमरत्व प्राप्त किया। वाल्मीकि लुटेरे से आदि कवि बने। कालीदास लकड़हारे से कवि कुलगुरु के सिंहासन पर बैठे। विश्वामित्र राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने। हरिश्चन्द्र सत्य पथ पर चलकर सत्यवादी कहलाए। भागीरथ कठोर तप साधना से स्वर्ग की गंगा को पृथ्वी पर उतार लाये। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के धर्म को सहिष्णुता के सूत्र में बांधा। आचार्य शंकर ने शिव और जीव का अभेद बताकर मनुष्य को ऊर्ध्वमुखी बनाया। 'रुहो रुहोह रोहित' अर्थात् उन्नति उसी की होती है, जो प्रयत्नशील है-अथर्ववेद। संसार में अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं जो विषम परिस्थितियों में भी निरंतरआगे बढ़ते और ऊँचे उठते रहे हैं। आपको भी ऐसा ही उन्नतिशील बनना है। आगे बढने भर की देर है-भाग्योदय का स्वर्णिम अवसर हाथ से न निकलने दीजिए। उपनिषद् में कहा गया है कि जो सोता रहता है, उसका भाग्य सोता रहता है, जो बैठता है, उसका भाग्य बैठता है, जो खड़ा होता है, उसका भाग्य खड़ा होता है और जो चलता है, उसका भाग्य भी चलता है। अत: तू चलता चल, चलता चल। रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान है, आन और बान है। जीवन में चलते रहो, प्रमाद न करो और सत्य का मार्ग चुनो, सत्कर्म करो। यही जीवन का मर्म है।

इन्द्र इच्चरत सखा-इन्द्र तो चलने वालों का सखा है। चलने का नाम ही जीवन है। बहते हुए पानी में जिन्दगी रहती है। वहीं वायु और सूर्य के प्राण-भंडार में से प्राण को अपनाता है। जागने का नाम जीवन है। जागृति ही गति है। आत्मा उनका ही स्वयंवर करती है, जो मार्ग में चल रहा हो। ईश्वर भी उनकी ही सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं। कमर कसकर खड़े हो जाने वालों का ही इन्द्र मित्र है। जो सोते-जागते सदैव जागरूक बने हुए हैं, वे ही सच्चे पथिक हैं। पुरुषार्थ ही जीवन को सार्थक बनाता है।

✻

संस्कार और आदर-सम्मान

– रश्मि रामदेरिया

'श्रद्धा ज्ञान देती है, नम्रता मान देती है और योग्यता स्थान देती है। पर तीनों मिल जायें तो व्यक्ति को हर जगह सम्मान मिलता है।'

'सम्पत्ति हो तो उसकी WILL बनती है और अच्छे संस्कार हों तो उसकी GOOD WILL बनती है।'

बात संस्कार और आदर की होती है वरना जो इंसान किसी के कड़वे बोल सुन सकता है, वो सुना भी सकता है। रिश्ते निभाना हर किसी के बस की बात नहीं है। रिश्तों में अपना दिल भी दुखाना पड़ता है किसी और की खुशी के लिये।

'चुप रहना, इससे बड़ा कोई जवाब नहीं और माफ करना, इससे बड़ा कोई इंतकाम नहीं।'

कौन व्यक्ति कैसा है, इसकी सही पहचान उसके रंग-रूप या जाति से नहीं, वरन उसके जीवन के संस्कारों से होती है। व्यक्ति के संस्कार ऊँचे हों तो वह छोटा होकर भी उच्च आदर्श को स्थापित कर जाएगा। जीवन संस्कारों से संतुलित होता है। जीवन संस्कारों से ही सुखी और व्यवस्थित होता है। संस्कार ही मनुष्य का सही मूल्यांकन करवाते हैं। संस्कार जीवन की नींव है, जीने की संस्कृति है, यही व्यक्ति की मर्यादा और उसकी गरिमा है। संस्कारों का व्यक्ति के साथ ऐसा सम्बन्ध है, जैसा जल का जमीन के साथ। वर्तमान में व्यक्ति जो कुछ कहता है, करता है उसके पीछे पूर्व जन्म के संस्कार (जो वह लेकर आता है) तथा वर्तमान में प्राप्त संस्कारों की बहुत बड़ी भूमिका रहती है।

संस्कार और संगति, दोनों अच्छे मिल जाएँ तो फिर क्या कहना-व्यक्ति महान हो जाता है। जन्म देने वाला पिता भुला दिया जाता है, सम्पत्ति देने वाले झगड़े की नींव रख जाते हैं, परन्तु संस्कार देने वाले पिता केवल पिता ही नहीं, गुरु का दायित्व भी निभा लेते हैं। व्यक्ति अपने कर्मों से संस्कार बनाता है। उसके कर्म उसकी आत्मा से बंध जाते हैं और उन कर्मों से जो संस्कार बनते हैं, उनके साथ ही पुनर्जन्म होता है। भारतीय संस्कृति में गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कारों का विशेष महत्त्व माना गया है। श्री क्षत्रिय युवक संघ में शिविरों में इन संस्कारों की जानकारी मिलती है। सोलह संस्कार पर संघ साहित्य की एक पुस्तक भी है जिसमें सभी संस्कारों का वर्णन किया हुआ है। सभी को उस पुस्तक को एक बार पढना चाहिए।

हम सभी को बड़े-बुजुर्गों का मान-सम्मान करना चाहिए। उनके प्रति हमारे मन में आदर का भाव होना चाहिए। हमारे माता-पिता का हमारे ऊपर बड़ा उपकार है। जब तक उनका साया हमारे ऊपर है, हमें उनको पूरा आदर देना चाहिए अन्यथा बाद में हमारे पास सिवाय पछताने के कुछ नहीं रह जाएगा। अपमान करना किसी का स्वभाव हो सकता है किन्तु सम्मान करना हमारे संस्कार हैं। दूसरों की भावनाओं का सम्मान करें, हो सकता है हमारे लिये यह बहुत साधारण सी बात हो, लेकिन जिसका सम्मान किया गया है, उसके लिये यह बहुत कुछ है।

अपने बच्चों पर निवेश करने के लिये सबसे अच्छी चीज है अपना समय और अच्छे संस्कार। अपने बच्चों को बहुत धन कमाने और अमीर बनने की शिक्षा देने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है उनको खुश रहने के संस्कार देना। ताकि जब वे बड़े हो जाएंगे तो हमेशा वस्तुओं की कदर करेंगे न कि उनकी कीमत की। अच्छे संस्कारों का प्रारम्भ अपने घर के वातावरण से ही हुआ करता है।

गाड़ी में अगर ब्रेक न हो तो दुर्घटना निश्चित है। उसी प्रकार जीवन में यदि अच्छे संस्कार व मर्यादा न हों तो पतन निश्चित है। संस्कारों से बड़ी कोई वसीयत नहीं और ईमानदारी से बड़ी कोई विरासत नहीं।

बड़प्पन वह गुण है जो पद से नहीं, संस्कारों से

प्राप्त होता है। सच्चाई के रास्ते पर चलने में फायदा है क्योंकि इस रास्ते पर भीड़ कम मिलती है। संस्कारों का महत्त्व सनातन धर्म में इस कारण था कि उनके द्वारा ऐसा वातावरण बनता है जिससे व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके। प्राचीन समय में संस्कार बड़े उपयोगी सिद्ध हैं। इनसे व्यक्तित्व के विकास में बड़ी सहायता मिली। मानव जीवन को संस्कारों ने परिष्कृत और शुद्ध किया तथा उसकी भौतिक और आध्यात्मिक आकांक्षाओं को पूर्ण किया। उसकी सामाजिक समस्याओं का समाधान भी इन संस्कारों द्वारा होता है।

हमारी आदतों का समूह रूप ही हमारा चरित्र है। हमारे व्यवहार द्वारा ही हमारा चरित्र प्रकट होता है। अत: संस्कारों की जीवन में बहुत बड़ी भूमिका है। संस्कारों के बिना सृष्टि का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाए। हमारे संस्कारों का सीधा सम्बन्ध हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियों से है। संस्कार प्रेरणा के स्रोत हैं। संस्कार बाहर से न दिखाई देने वाली ऊर्जा है। जीवन में पाप और पुण्य के लिये पूरी तरह से जिम्मेवार हमारे संस्कार ही हैं।

*

ईश्वर की पूजा

वृंदावन के एक मंदिर में मीराबाई ईश्वर को भोग लगाने के लिये रसोई पकाती थीं। वे रसोई पकाते समय मधुर स्वर में भजन गाती थीं। एक दिन मंदिर के प्रधान पुरोहित ने देखा कि मीरा अपने वस्त्रों को बदले बिना और नहाए बिना ही रसोई बना रही है। उन्होंने बिना नहाए-धोये भगवान के लिये रसोई तैयार करने पर मीरा को डाँटा। पुरोहित ने उससे कहा कि ईश्वर वह भोग कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

पुरोहित के आदेशानुसार दूसरे दिन मीरा ने भोग तैयार करने से पहले न केवल स्नान किया, बल्कि पूरी पवित्रता और सतर्कतापूर्वक भोग भी बनाया। शास्त्रीय विधि का पालन करने में कोई चूक न हो जाए इस बात से भी वे काफी डरी रहीं। तीन दिन बाद पुरोहित ने सपने में भगवान को देखा। भगवान ने उनसे कहा कि वे तीन दिन से भूखे हैं। पुरोहित ने सोचा कि जरूर मीरा से भगवान का भोग तैयार करने में कोई चूक रही होगी। उन्होंने भगवान का भोग बनाने में न तो शास्त्रीय विद्या का पालन किया होगा और न ही पवित्रता का ध्यान रखा होगा।

भगवान बोले-''इधर तीन दिनों से मीरा काफी सतर्कता के साथ भोजन तैयार कर रही है मगर यही सोचती रहती है कि उसमें कहीं कोई अशुद्धि या गलती न हो जाए। इस फेर में मैं उसका प्रेम तथा मधुर भाव महसूस नहीं कर पा रहा हूँ। इसलिए यह भोग मुझे रुचिकर नहीं लग रहा है।''

ईश्वर की यह बात सुनकर पुरोहित ने मीरा के पास जाकर पहले की तरह ही भोजन बनाने की विनती की और साथ ही यह अनुरोध भी किया कि भोज तैयार करते समय पहले की ही तरह ईश्वर के प्रति प्रेम भाव बनाए रखे। मीरा ने वैसा ही किया। उसके पश्चात् भगवान ने फिर कभी सपने में पुरोहित को दर्शन नहीं दिए और न ही कोई शिकायत की।

सच तो यह है कि जब भगवान की आराधना अंतर्मन से की जाती है तब अन्य किसी विधि-विधान की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। अभिमान त्यागकर और फल की चिंता किए बिना ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। उनकी प्रेमपूर्वक आराधना और सेवा ही सर्वोत्तम है। इसलिए बिना मंत्रों के उच्चारण और फूल चढ़ाए हुए ही यदि आप मन से दो मिनट के लिये भी ईश्वर की पूजा कर लेते हैं, तो यही सच्ची पूजा होती है।

इन्द्र और प्रतर्दन

– कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद

हमारे पुराण, उपनिषद एवं दूसरे अनेक धार्मिक-ग्रंथों में देवासुर संग्राम का अनेक बार वर्णन आया है। असुर सदैव ही देवताओं को दु:ख देते रहते थे। वे शक्ति में देवताओं से प्रबल थे, अत: देवता उनसे सदैव भयभीत रहते थे। असीम बलशाली एवं अनेक शक्तियों से सम्पन्न देवराज इन्द्र भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाते थे।

फिर एक बार ऐसा समय आया, जब देवराज इन्द्र को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। आत्मज्ञान पा लेने पर इन्द्र की शक्ति बढ़ी और उन्होंने असुरों को पराजित कर संपूर्ण देवताओं में श्रेष्ठता का पद प्राप्त किया। वे स्वर्ग का राज्य एवं त्रिभुवन का स्वामित्व पा गए। इस देवासुर संग्राम में उनकी सहायता की थी राजा दिवोदास के परम प्रतापी पुत्र प्रतर्दन ने। यह प्रसंग उसी प्रतापी प्रतर्दन और देवराज इन्द्र से संबंधित है।

प्रतर्दन की सहायता से इन्द्र ने जब असुरों पर विजय प्राप्त कर ली तो वे प्रतर्दन को अपने साथ स्वर्ग लोक ले गए। वहाँ उनकी अद्‌भुत युद्धकला और परम पुरुषार्थ से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उनसे कहा-''प्रतर्दन! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, बोलो तुम्हें कौन-सा वर दूँ?''

प्रतर्दन ने विनयपूर्वक कहा-''देवराज! जिस वर को आम मनुष्य जाति के लिये परम कल्याणकारी मानते हों, वैसा कोई वर मेरे लिये आप स्वयं चुन लें।''

इन्द्र बोले-''राजन्! इस बात को सभी जानते हैं कि कोई भी दूसरे के लिये वर नहीं मांगता, इसलिए कि वह नहीं जानता कि दूसरा क्या माँगेगा, अत: तुम्हीं अपने लिए कोई वर मांगो।''

प्रतर्दन ने कहा-''तब तो मेरे लिये कोई वर है ही नहीं, मैं उनसे वंचित ही रह जाऊँगा। आप स्वयं तो मेरे लिये कोई वर मांगेंगे नहीं और मैं स्वयं यह नहीं जानता कि मुझे क्या मांगना चाहिए?''

प्रतर्दन की यह बात सुनकर भी इन्द्र अपने वचनों से विचलित नहीं हुए, क्योंकि वे वर देने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। इन्द्र क्योंकि सत्य स्वरूप हैं, अत: प्रतर्दन के न मांगने पर भी अपनी ओर से ही वर देने को तैयार हो गए।

इन्द्र ने कहा-''प्रतर्दन! तुम मेरे ही यथार्थ रूप को जानो। इसे ही मैं मानव जाति के लिये परम कल्याणकारी वर मानता हूँ कि वह मुझे भली-भाँति जाने। तुम चाहो तो कह सकते हो कि आपमें ऐसी क्या विशेषता है, जो मैं आपको जानूं? तो सुनो, मैंने प्राण ब्रह्म के साथ एकता स्थापित कर ली है, इसलिए मुझमें कर्तापन का अभिमान नहीं है। मेरी बुद्धि कहीं भी लिप्त नहीं होती। मेरे मन में कभी भी कर्मफल की इच्छा उत्पन्न नहीं होती, इसलिए कोई भी कर्म मुझे बंधन में नहीं डालता। इसलिए यह भी कहा जाता है कि मैंने तीन मस्तक वाले विश्वरूप को मार डाला। कितने ही मिथ्या संन्यासियों को, जो आश्रम के अनुकूल आचार से भ्रष्ट और ब्रह्मविचार से विमुख हो चुके थे, टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियों को खिला दिया। कितनी ही बार प्रह्लाद को कष्ट देने वाले दैत्य राजाओं को मौत के घाट उतार दिया। पुलोपासुर को पीड़ा देने वाले दानवों तथा पृथ्वी पर रहने वाले कालखांज नामक बहुत-से असुरों को भी समस्त बाधाएँ पार करके मार डाला, लेकिन इतना करने पर भी मेरे एक रोम को हानि नहीं पहुँची, क्योंकि मैं अहंकार और कर्मफल की कामना से शून्य था। इसी प्रकार जो मुझे भली-भाँति जान लेगा? उसके पुण्यलोक को किसी भी कर्म से हानि नहीं पहुँचेगी।''

प्रतर्दन ध्यानपूर्वक इन्द्र की बात सुन रहे थे। इन्द्र ने आगे कहा-''मैं प्रज्ञास्वरूप प्राण हूँ। समस्त प्राणियों की आयु तथा जीवनभूत जो प्राण है, जो मृत्यु से रहित अमृतपद है, वह मुझ इन्द्र से भिन्न नहीं है। आयु प्राण है। प्राण ही आयु है तथा प्राण ही अमृत है। जब तक इस शरीर में प्राण निवास करता है, तब तक ही आयु है। प्रज्ञा से मनुष्य सत्य का निश्चय और विकल्प करता है। जो

आयु और अमृत रूप से इन्द्र की उपासना करता है, वह इस लोक में पूरी आयु तक जीवित रहता है तथा स्वर्गलोक में जाने पर अक्षय अमृत को पीता है।''

इन्द्र की बात सुनकर प्रतर्दन ने पूछा-''इस प्राण के विषय में कुछ विद्वान कहते हैं कि सब प्राण (वाक् आदि समस्त इन्द्रियाँ और प्राण) एक होकर कार्य करते हैं, अलग-अलग इनका कार्य सम्भव नहीं है। जब वाणी बोलने लगती है, उस समय सब प्राण मौन होकर उसका अनुमोदन करते हैं। जब नेत्र देखने लगते हैं, तब अन्य सब प्राण भी उसके पीछे रहकर देखने लगते हैं। जब कान सुनने लगते हैं, जब अन्य सब प्राण भी उसका अनुसरण करते हुए सुनते हैं। जब मन चिंतन करने लगता है, तो अन्य प्राण भी उसके साथ रहकर चिंतन करते हैं और मुख्य प्राण जब अपना कार्य करता है, तब दूसरे प्राण भी उसके साथ-साथ वैसी ही चेष्टा करते हैं। क्या यह सत्य है?''

इन्द्र ने कहा-''हाँ, ऐसा ही है। सब प्राण एक होते हुए भी जो पांच कहलाते हैं, वे नि:संदेह परम कल्याण रूप हैं। उसे परम कल्याण रूप मैं इसलिए कहता हूँ कि वाक् के बिना गूंगे, नेत्र के बिना अंधे, कान के बिना बहरे, मन:शक्ति के बिना शिशु तथा मूर्ख आदि जीवित रहते हैं। किसी अंग के कट जाने या विकृत हो जाने पर भी मनुष्य जीवित रहते हैं, किन्तु प्राण न रहने पर एक पल भी जीवित रहना सम्भव नहीं है। प्राण शक्ति का उद्‌बोधक है और ज्ञान का भी। प्राण परमात्मा है। प्राणमय परमात्मा का दर्शन ही ज्ञान है। यही प्रज्ञा है।''

''प्रज्ञा और प्राण दोनों साथ-साथ ही इस शरीर में रहते हैं। दोनों ही जीवात्मा की मृत्यु के बाद देह से बाहर निकल जाते हैं। प्रज्ञा के कारण ही प्राण के माध्यम से इंद्रियों द्वारा उनके विषयों को ग्रहण किया जाता है। प्रज्ञा के बिना प्राण रहते हुए भी कुछ बोध नहीं हो सकता। बुद्धि का कोई भी व्यापार प्रज्ञा के बिना सिद्ध नहीं होता। वाणी को जानने की इच्छा से बढ़कर वाणी की प्रेरक आत्मा को जानना है। इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों को जानने से बढ़कर उन विषयों को ग्रहण करने वाली आत्मा को जानना है।''

इन्द्र ने प्रतर्दन को आगे समझाया-''जैसे इन्द्रियों के विषय भूत मात्रा हैं, वैसे ही वाक् आदि इन्द्रियाँ प्रज्ञा मात्रा हैं। यदि भूत मात्राएँ न हों तो प्रज्ञा मात्राएँ भी नहीं रह सकतीं। इन दो में से किसी भी एक के द्वारा किसी भी रूप की (विषय अथवा इन्द्रिय) सिद्धि नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि इन्द्रिय से विषय की और विषय से इन्द्रिय की सत्ता जानी जाती है। यदि केवल विषय हो तो विषय से विषय का ज्ञान नहीं हो सकता अथवा केवल इन्द्रिय रहे तो उससे भी इन्द्रित का ज्ञान सम्भव नहीं है, अत: दोनों, भूत मात्रा और प्रज्ञा मात्रा का (विषय तथा इन्द्रिय का) होना आवश्यकता है।

यहाँ यह बात समझने की है कि विषय और इन्द्रियों में तो भेद है, किन्तु प्रज्ञा मात्रा और भूत मात्रा में भेद नहीं है। जैसे रथ की नेमि (नाभि) 'अरों' के और 'अरे' रथ की नाभि के आश्रित हैं, इसी प्रकार भूत मात्राएँ प्रज्ञा मात्राओं में स्थित हैं और प्रज्ञा मात्राएँ प्राण में प्रतिष्ठित हैं, अत: प्राण ही प्रज्ञात्मा, आनंदमय, अजर और अमृतमय है। यह प्राण एवं प्रज्ञारूप चेतन परमात्मा ही इस देह का अभिमान करने वाले पुरुष से साधु कर्म कराता है। यह लोकपाल है, यह लोकों का अधिपति है और यही सर्वेश्वर है। इन सब गुणों से युक्त प्राण को ही परमात्मा और निजात्मा जानकर आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।''

इन्द्र के इस आत्मज्ञान-संबंधी उपदेश से प्रतर्दन बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने पृथ्वी पर आकर इन्द्र का यह उपदेश मनुष्यों को दिया, जिससे समस्त मानव जाति को लाभ पहुँचा।

आनन्द परिस्थितियों के अधीन नहीं है, इस भ्रांति का निवारण कर स्वयं में ही उस आनन्द स्वरूप ज्योति को खोजें। इसी में जीवन का गूढ रहस्य भरा है।

- हरिकिशनदास

अपनी बात

संसार में हम सब सपने देखते हैं। धन के सपने, संपदा के सपने, पद के सपने, प्रतिष्ठा के सपने। और सपने कभी पूरे नहीं होते, क्योंकि अगर पूरे भी हो जाएँ तो सपने बड़े लोचपूर्ण हैं। जब तक वे पूरे होते हैं, तब तक वे फैलकर और बड़े हो जाते हैं। सपने तो रबड़ के गुब्बारों जैसे होते हैं, बच्चों की तरह व्यक्ति फूंक देता रहता है और सपनों का गुब्बारा फैलकर विस्तार पाता रहता है। कुछ और नहीं करना पड़ता, व्यक्ति स्वभावत: फूंक देता रहता है और सपनों का विस्तार होता रहता है, सपने बड़े होते रहते हैं। सपनों की कामना फूंक जैसी ही है। कामना के लिये कुछ करना नहीं पड़ता, आराम से बैठकर जितना दिवा-स्वप्न देखना चाहते हैं, देख सकते हैं। ज्यादा फूंक मारें तो बच्चों के गुब्बारे तो फूट सकते हैं पर कामना के गुब्बारे कभी नहीं फूटते, क्योंकि गुब्बारे हों तो फूटें न। गुब्बारा कम से कम कुछ तो है, चाहे बहुत पतली रबड़ है और अन्दर हवा है, लेकिन सपनों के गुब्बारों में पतली रबड़ ही नहीं, हवा ही हवा है। उसको चाहे जितना फैलाते जाओ, आकाश भी छोटा हो जाता है सपनों से। उसकी कोई सीमा नहीं।

दुनिया में दो चीजें असीम हैं, एक सपना और एक ब्रह्मा। उनमें से एक है और एक बिल्कुल नहीं है।

सपना जितना बड़ा होता है, उससे व्यक्ति तुलना करता है, जो उसके पास है और तब बड़ी अतृप्ति पैदा होती है, बड़ा असंतोष जगता है। कोई अन्य व्यक्ति उसे गरीब नहीं बना रहा है पर वह स्वयं इस तुलना से अपने आपको गरीब बनाए चलता है। जिस दिन यह समझ में आया बुद्ध और महावीर को, वे तत्क्षण सब कुछ छोड़कर सड़क पर आ खड़े हुए। वह जो सपना था जिसके कारण गरीब से गरीब होते जा रहे थे, वह सपना छोड़ दिया। इसलिये दुनिया में बड़ी अनूठी घटना घटती है। सम्राट दीन रह जाते हैं और कभी-कभी राह के भिखारी ने ऐसी गरिमा पाई है कि उसकी महिमा का बखान नहीं किया जा सकता।

इसका राज कहाँ है? इसकी कुंजी कहाँ है?

जो पास में है उससे जो तृप्त है, जिसकी वासना रती भर भी भविष्य की तरफ नहीं जाती, जिसने वर्तमान को काफी पाया और काफी शब्द भी ठीक नहीं है, काफी से ज्यादा पाया, क्योंकि काफी में थोड़ी कमी मालूम पड़ती है। बस काफी, ऐसा लगता है कि कुछ और बाकी है-जिसने काफी ही नहीं, जो है उसमें पर्याप्त से ज्यादा पाया, परितृप्ति पाई, परितोष पाया और इतना ही नहीं कि वह राजी है, वह अनुगृहित है, वह अहोभागी है, जो मिला है उसके लिये उसके हृदय में बड़ा गहन धन्यवाद है-तो कामना टूट जाती है। संतोष कामना को मिटा देता है। असंतोष कामना की अग्नि में घी डालता है, उस अग्नि को बढाता है।

आदमी अतीत को पकड़े रहता है, जो-जो उसने अतीत में कमाया है-धन, पद, ज्ञान, त्याग, जो भी, उसको संभाले रखता है कि कहीं यह खो न जाय। आँखें लगी रहती हैं भविष्य पर और पैर अड़े रहते हैं अतीत में। दोनों हाथों से अतीत को पकड़े रहता है और दोनों आँखों से सपना देखता रहता है भविष्य का। इन दोनों के बीच में क्षण है एक, जहाँ अस्तित्व समाधि में सदा ही लीन है, जहाँ अस्तित्व क्षणभर को भी कंपा नहीं, जहाँ निष्कम्प चैतन्य की ज्योति जल रही है, जहाँ मंदिर का द्वार खुला है।

वर्तमान का क्षण तो ऐसे है जैसे रेत का एक कण, और भविष्य का जाल ऐसे है जैसे सारे सागरों के किनारे की रेत। वर्तमान का कण कहाँ खो देते हैं उस रेत में, पता नहीं न चलेगा और वही द्वार है मंदिर प्रवेश का।

संतुष्ट होना सीखें तो काम की पहली बाधा गिर जाएगी। वर्तमान में जीना प्रारम्भ करें तो अतीत की बेड़ियाँ टूट जाएंगी। शिविरों में जो कुछ मिलता है, वहाँ उसी में संतुष्ट रहते हैं। यही अभ्यास जीवन के हर क्षेत्र में चलता रहे। शिविर-शाखा के हर कार्यक्रम में एकाग्र बने रहने का अभ्यास होता है। वही अभ्यास जीवन में चलता रहे तो वर्तमान के उस क्षण को पकड़ा जा सकता है जो परमात्मा के मंदिर का द्वार है।

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान	मार्ग आदि
01	चार दिवसीय	05.10.2019 से 08.10.2019	**ढेलाणा** (ग्राम-तालिया)	लोहावट से 5 कि.मी. दूर। सम्पर्क : हरिसिंह ढेलाणा-9783622100
02	चार दिवसीय	05.10.2019 से 08.10.2019	**डोरडा** (जालोर)	भीनमाल, जसवंतपुरा, रामसीन से बस।
03	चार दिवसीय	05.10.2019 से 08.10.2019	**बामणू**	जोधपुर-पोकरण मार्ग पर मंडला उतरें, वहाँ से साधन उपलब्ध।
04	चार दिवसीय	05.10.2019 से 08.10.2019	**दामोदरा** (जैसलमेर)	जैसलमेर से सम रूट पर।
05	चार दिवसीय (बालिका)	05.10.2019 से 08.10.2019	**पादरू** (बाड़मेर)	(जैतमाल छात्रावास) बालोतरा, सिवाना सिणधरी से बस।
06	चार दिवसीय (बालिका)	05.10.2019 से 08.10.2019	**जाखली** (नागौर)	
07	चार दिवसीय	05.10.2019 से 08.10.2019	**रानियावास**	नायला (जयपुर)
08	तीन दिवसीय	11.10.2019 से 13.10.2019	**मैसूर** (कर्नाटक)	श्री वैंकटेश्वर मंदिर परिसर सम्पर्क सूत्र- श्री कुबेरसिंह-7892087577 श्री बालाजीतसिंह-7892463650
09	चार दिवसीय	19.10.2019 से 22.10.2019	**रोड़ा** (बीकानेर)	नोखा से 3 कि.मी. दूर शिविर स्थल,
10	सात दिवसीय	19.10.2019 से 25.10.2019	**राणीवाड़ा** (जालोर)	
11	सात दिवसीय	19.10.2019 से 25.10.2019	**शिव** (बाड़मेर)	राव चम्पाजी संस्थान, शिव। राजेन्द्रसिंह भिंयाड़ द्वितीय-9414655723
12	सात दिवसीय	19.10.2019 से 25.10.2019	जोधपुर	पंवार कृषिफार्म, लटियाल वाटिका के सामने। सम्पर्क सूत्र-श्री रामप्रतापसिंह पाल-9413521625
13	चार दिवसीय (बालिका)	20.10.2019 से 23.10.2019	**नाडोल** (पाली)	आशापुरा माताजी मंदिर, पाली, रानी, फालना से बस।

14	सात दिवसीय	20.10.2019 से 26.10.2019	**फलसूण्ड** (जैसलमेर)	पोकरण से हर घण्टे बस, शेरगढ़, साकड़ा व बाड़मेर से भी बस।
15	सात दिवसीय	20.10.2019 से 26.10.2019	**पीपलून** (सिवाना)	श्री गणपतसिंह का फार्म हाउस, सिवाना से साधन।
16	चार दिवसीय (बालिका)	22.10.2019 से 25.10.2019	**चोहटन**	विरात्रा महाविद्यालय। सम्पर्क : मोहनसिंह देदूसर-9950116125
17	चार दिवसीय	22.10.2019 से 25.10.2019	**सेमारी** (उदयपुर)	सम्पर्क : डूंगरसिंह भीमपुर-9829738898 सम्पर्क : कर्नल केसरसिंह-8107806119
18	चार दिवसीय	22.10.2019 से 25.10.2019	**लकड़वास** (उदयपुर)	सम्पर्क : भगतसिंह बेमला-9772211113
19	चार दिवसीय (बालिका)	22.10.2019 से 25.10.209	**देवीकोट** (जैसलमेर)	मल्लीनाथ छात्रावास; जैसलमेर व फतहगढ़ से बस।
20	चार दिवसीय (बालिका)	22.10.2019 से 25.10.2019	**बीकानेर**	नारायण निकेतन, जयपुर रोड़ पर, सुभाष पेट्रोल पम्प के पीछे
21	चार दिवसीय	22.10.2019 से 25.10.2019	**फेफाना** (हनुमानगढ़)	एम.डी. महाविद्यालय। नोहर-सिरसा रूट पर स्थित। सम्पर्क सूत्र-एडवोकेट महेशसिंह-8302892290 श्री अंकितसिंह फेफाना-7689931964
22	चार दिवसीय	23.10.2019 से 26.10.2019	**बोबासर** (चूरू)	तह. सुजानगढ़।
23	चार दिवसीय	29.10.2019 से 01.11.2019	**हुडास**	लाडनू से नागौर वाया डेह मार्ग पर स्थित।
24	चार दिवसीय (बालिका)	30.10.2019 से 02.11.2019	**पनराजसर**	मंदिर परिसर। सम्पर्क : पदमसिंह रामगढ-9001071485
25	सात दिवसीय	30.10.2019 से 05.11.2019	**नारोली** (बनासकांठा)	उत्तर बुनियादी विद्यालय, धराद से 31 कि.मी. दूर सांचोर रोड़ पर, बस सुविधा। पिलुड़ा से बांई ओर मुड़ना होगा।
26	चार दिवसीय	31.10.2019 से 03.11.2019	**पीठ** (डूंगरपुर)	कोमेन्द्रसिंह पीठ।
27	चार दिवसीय	31.10.2019 से 03.11.2019	**कोटड़ीकलां** (चित्तौड़गढ़)	निम्बाहेड़ा। सम्पर्क : लक्ष्मणसिंह बडोली-9610392246
28	चार दिवसीय	1.11.2019 से 4.11.2019	**बरसिंगपुरा** (सीकर)	पलसाना से साधन उपलब्ध हैं। सम्पर्क सूत्र-श्री मूलसिंह-9887851729 श्री लालसिंह-9001993606

29	सात दिवसीय (बालिका)	30.10.2019 से 05.11.2019	**रमुण** (बनासकांठा)	रोयल शैक्षणिक संकुल, तह. धानेरा धानेरा से डीसा रोड़ पर।
30	चार दिवसीय	9.11.2019 से 12.11.2019	**प्रतापगढ़**	वन देवी समिति, धरियावाद रोड़। सम्पर्क सूत्र-श्री कुबेरसिंह सैलारपुर-9928051478
31	चार दिवसीय	21.11.2019 से 24.11.2019	**सोइन्तरा**	सम्पर्क सूत्र-चन्द्रवीरसिंह भाळू-9950188901 38 कि.मी. पर उतरकर पहुँचें। शेरगढ से भी बस।
32	तीन दिवसीय	31.11.2109 से 2.12.2019	**जड़िया**	तह. धानेरा। (बनासकांठा) धानेरा से 10 कि.मी. दूर। बस सुविधा उपलब्ध।

शिविर में आनेवाले युवक काला नीकर, सफेद कमीज या टी-शर्ट, काली जूती या जूता व युवतियाँ केसरिया सलवार कमीज, कपड़े के काले जूते, मौसम के अनुसार बिस्तर (एक परिवार से दो जने हों तो अलग-अलग), पेन, डायरी, टॉर्च, रस्सी, चाकू, सूई-डोरा, कंघा, लोटा, थाली, कटोरी, चम्मच, गिलास साथ लेकर आवें। संघ साहित्य के अलावा कोई पत्र-पत्रिका, पुस्तकें एवं बहुमूल्य वस्तुएँ साथ ना लावें।

दीपसिंह बेण्यांकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख
श्री क्षत्रिय युवक संघ

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

गीता में कहा है हम शत्रु को बाहर ढूँढ रहे हैं। हमारे अन्तर में नहीं देखते। महाभारत के युद्ध में कही गई थी गीता। कितनी अद्‌भुत बात कही है कि जो महाभारत का युद्ध है बाहर चल रहा था, कौरवों और पाण्डवों के बीच में चल रहा था, सद्‌प्रवृति और दुष्प्रवति के बीच चल रहा था। पर साथ ही साथ यह आन्तरिक दर्शन भी है। हमारे अन्दर भी यह युद्ध चलता रहता है। जब हम हमारे हृदय की, आत्मा की आवाज नहीं सुनते हैं, तब हम अपने दुश्मन बन जाते हैं। अपने शत्रु खुद ही बन जाते हैं। लेकिन यदि कही हुई बातों की हम सावधानी रखें, संयम रखें, मन सहित इन्द्रियों को संयम में रखें, तो निश्चित रूप से हम ही हमारे मित्र बन जाएँगे, और हमारी साधना सफल होगी। सफलता हमारा कोई उद्देश्य नहीं है। कर्म करने का अधिकार हमको है। हम तो कर्म करेंगे, परिणाम अपने आप आएँगे। परिणाम की चिन्ता न करें। पर अपने इन सब दुश्मनों को देखते रहें। तो आपका साथी आपका दुश्मन नहीं है, आपका घटनायक भी आपका दुश्मन नहीं है और संसार में जाएँगे, वहाँ संसार में भी कोई आपका दुश्मन नहीं है। दुश्मन भी होंगे लेकिन इससे पहले आपको अपने आपसे संघर्ष करना है, यह युद्ध है। क्षत्रिय जाति सैनिक जाति है। वैसे तो सभी युद्ध कर रहे हैं, सभी संघर्ष कर रहे हैं लेकिन हमारी साधना क्षत्रिय युवक संघ की साधना आन्तरिक और बाहरी है। इसमें शत्रु कौन है? मित्र कौन है? इसको हमको पहचानना है। ऐसा हम नहीं करेंगे तो निश्चित रूप से हम पतन के मार्ग पर चले जाएँगे और नरक में भी वास मिले कि न मिले, कौन कह सकता है? आज के इस मंगल प्रभात संदेश में हमारे लिये क्षत्रिय युवक संघ की ओर से यही संदेश है कि अपने आंतरिक शत्रुओं को पहचानें और उनसे युद्ध करें।

*

अलख नयन मंदिर संस्थान

अलख

ऑप्टिकल डिविजन

उदय सिंह चुण्डावत

मो. 9950644945

18.19, दुर्गा नर्सरी रोड़, अशोक नगर, उदयपुर-313001

फोन : 0294-2427515 Email : udai.alakh@gmail.com

अलख नयन आई हॉस्पिटल, एयरपोर्ट रोड़, बेड़वास,

प्रतापनगर, उदयपुर मो. 7300061261

अलख नयन आई हॉस्पिटल, ब्रहमा क्षत्रिय होटल के पास,

नानी जी की बावड़ी, कुम्हारवाड़ा, नाथद्वारा, राजसमन्द

फोन : 02953-234626 मो. 7300061264

अलख नयन आई सेन्टर, राज मॉल, उदयपुर रोड़, प्रतापनगर, चित्तौड़गढ़

फोन : 01472-244626 मो. 7300069904

अलख नयन मन्दिा, 16, पूजा नगर, तहसील रोड़, झाड़ोल,

उदयपुर फोन 02959-220045

।। श्री गणेशाय नमः ।।

RAJHANS OPTICAL

Spectacle - Sunglasses - Contact Lens

Dilip Singh Chundawat

Contact Lense Expert

(M) 8058756519, 9602055727

38, Durga Nursery Road, Ashok Nagar,
Opp. Sukhadia Memorial, Udaipur (Raj.)
E-mail : dilipschundawat@gmail.com

Ray-Ban

National Optical

Prahlad Singh Chundawat
Sr. Optometrist

- कम्प्यूटर द्वारा आँखों के नम्बर निकालने की सुविधा।
- सभी प्रकार के कॉन्टेक्ट लैंस के नम्बर निकालने की सुविधा।
- सभी ब्रांडेड कम्पलियों के प्रोग्रेसिव लैंसेज, ARC लैंसेज।
- सभी प्रकार के लैसेंज द्वारा डॉक्टरी नम्बर के चश्में बनाने की सुविधा।

2, Sewashram Choraha, Udaipur-313001 (Raj.)
(M) 9829297971, 7737579892

विजन आई केयर

सीनियर ऑप्टीशन द्वारा आँखों की जाँच

कमल सिंह राठौड़

मो. 7737456000, 9929535079

चोरड़िया मार्केट, मेन रोड़, कांकरोली,

जिला - राजसमन्द (राज.)

महाराणा प्रातप चौराहा, 100 ft. रोड़ के सामने, कांकरोली,

जिला राजसमन्द (राज.) मो. 9153334444

अलख

अलख नयन

आई हॉस्पिटल

उदयपुर

Super
Specialized
Eye Care Institute

विश्वस्तरीय सम्पूर्ण नेत्र चिकित्सा सेवाएं

मोतियाबिन्द
- आत्याधुनिक विश्वस्तरीय तकनीक
- युनिफोकल/मल्टीफोकल/टोरीक लैंस
- जन्मजात मातियाबिंद सर्जरी
- एलकॉन सेल्चुरियन, इन्फिनिटी मशीन
- बिना टांके, बिना इंजेक्शन, बिना पटटी

रेटिना
- डिटेचमेन्ट सर्जरी ▪ रेड व ग्रीन लेजर
- फ्लुरोसिन व ICG एन्जियोग्राफी मैक्यूलर होल सर्जार
- डिसलोकेटड लैंस सर्जरी ▪ डायेबेटिक रेटिनोपैथी की जाँच, इलाज व सर्जरी ▪ Photo-Dynamic Therapy-AMD
- नवजात शिशुओं में ROP रेटिनोपैथी ऑफ प्रीमेच्युरिटी जाँच

कालापानी
- Filtering and Combined Procedures
- डायोड लेसिक ▪ट्रेबेक्यूलोप्लास्टी
- Yag Laser, Iridotomy ▪Gonioscopy
- HVF (ZEISS)
- Pachymetry ▪ NCT

कॉर्निया
- Corneal Tear ▪ किरेटोकॉनस, C3R
- Pentacam ▪Specular Microsocpy
- टेरिजियम (नाखुना) ऑटोग्राफ्ट
- कॉर्नियल प्रत्यारोपण (ट्रान्सपलान्टेशन)
- DALK, DSEK, DMEK Surgery
- नेत्र कोष (आई बैंक व प्रत्यारोपण केन्द्र)

रिफ्रेक्टिव
- लेसर द्वारा चश्मे के नंबर हटाना
- Epi-लेसिक ▪लेसिक ▪PTK
- रिफ्रेक्टिव लैंस (ICL)

24/7 Emergency Services

ऑक्यूलोप्लास्टि
- Ptosisr Surgery ▪ Trauma
- Entropion & Ectropion
- DCR ▪ Botox
- Enucleation & Evisceration
- Ocular Tumor Surgery
- Ocular Plastic Surgery

'अलख हिल्स', प्रताप नगर ऐक्सटेंशन, एयरपोर्ट रोड, उदयपुर 0294-2490970, 71, 72, 9772204624
e-mail : info@alakhnayanmandir.org, Website : www.alakhnayanmandir.org

अक्टूबर, सन् 2019
वर्ष : 56, अंक : 10

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्.....

.....

.....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह